श्री आचार्य जी चिंतन करते हुए

श्री कृष्ण प्रेमामृतम

श्रीकृष्ण प्रेमामृतम्

(महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी विरचित)

69 To 112

69 To 112. - Complete

है और साक्षात् रसात्मक श्रीजी में ही काम केलिकला मूर्त्ति व्यवहार हमारो ही है यह भाव है । और साक्षात् केलिकला कहवे सूं सुरत में रमण में विचित्रता सूचना करी । श्रीजी के एक एक अंग में दर्शन मात्र सूं सुरत की इच्छा प्रकट करी और श्रीजी सुरत में अनेक प्रकार के बंधन में कुशल है तासूं साक्षात् कामकेलिकला को स्वरूप ही है अथवा साक्षात् पद को अर्थ प्रत्यक्ष है तासूं प्रत्यक्ष ही केलिकला में ही है स्वरूप जिनको दर्शन मात्र सूं ही सुरत भाव सूं ही ज्ञान होय है नतु प्रथम कहे समय में ही रसिक शिरोमणि भावादि ज्ञान भी होय है यह भाव है अथवा साक्षात् केलिकला के निमित्त है स्वरूप जिनको ऐसे श्रीजी हैं ऐसे रति समय में जो प्रभु को स्वरूप ताकूं वर्णन करके वा समय में ही वा रस के पुष्ट करने वाले और रसन सूं भी मिले ये कहे हैं --

६९ -- परिहास रसार्णवः -- परिहास जे हास्य रस के प्रकट करवे वारे वचन विनमें जो रस है तद् रूप ही समुद्र है अथवा हास्य रस के प्रकट करवे वारे जे वचन विनमें जो रस तिनके समुद्र रूप हैं श्रीजी, हास्य वचन कहें हैं तब एक ही वचन को जो रस है तामें ब्रज भक्त मगन जब होंय तब श्रीजी दूसरो वचन तैसो ही कहें हैं तब प्रथम रसके पार कूं न देखत ब्रजभक्त प्रथम सूं भी समुद्र के एक तरंग सूं दूसरे तरंग में जैसे अधिकता होय है तैसे दूसरे अधिक हास रस तरंग में मग्न होय जाय हैं, ऐसे उत्तरोत्तर अधिक हास्य रस

कूं प्रकट करें हैं तासूं रस की ही मुख्यता है । वचन की नहीं है यासूं ही रस पद दियो है वचन बहुत होय रस वारो होय तो वा वचन में रस नहीं आवे है तासूं ही श्रीजी नयन भ्रौं आदि सूं भी हास्य रस कूं प्रकट करें हैं और भी रसिक सिद्धांत में कहैं हैं रस तो केवल श्रृंगार ही है और जे वीर आदि कहे वे तो वा श्रृंगार के पुष्टि करवे सूं ही रस कहे जाय हैं नहीं तो वे रस नहीं हैं जैसे बड़े राजा के संपूर्ण साधन सूं सुवर्णमय होवे है और जे रूप आदि हैं वे सुवर्ण सूं तुच्छ हैं तासूं ताकूं तो धातु भाव नहीं मानें हैं तैसे श्रृंगार ही केवल रस है और तो वाके अंग ही हैं, नहीं तो या श्रृंगार रस में और रसन कूं रसाभास करनो होय तब तो महा हानि । तासूं और वीरादि जे हैं वे तो श्रृंगार रस के पुष्ट करवे वारे हैं तासूं ही रमण में विशेषकर मर्दन करण के अभिप्राय सूं ही **केशिमथनमुदारं** इहां और **मधुसूदन मुदित मनोजं** यहां केशिमथन पद सूं और मधुसूदन पद सूं रति में विशेष मर्दन की सूचना करी इत्यादि नामन सूं जयदेव ने भी गीतगोविन्द में तैसे निरूपण कियो है नहीं तो श्रृंगार में वीर रस कूं प्रकट करवे वारे नाम कूं काहे कूं प्रयोग करत, तासूं ही श्रृंगार में यहां भी रति रमण कह्यो है । अथवा ब्रजभक्तन ने कियो जो हास्य रस सो है समुद्र जिनकूं ऐसे श्रीजी हैं । जब श्रीजी और ब्रजभक्त आपस में हास्य वचन कहें हैं तब हांसी में भी श्रीजी विनकूं नहीं जीत सकें हैं रस की रीति ही ऐसी है यामें दोष नहीं । अपनी

जय की अपेक्षा सूं अपने प्रिय की जय में महारस होय यह प्रकट प्रेम की रीति है और श्रीजी में प्रथम वृन्दावन कूं चंद्रभाव निरूपण कियो है और यहां परिहास रस को समुद्र भाव कह्यो तासूं सदा पूर्ण वृन्दावन चन्द्र सूं या हास्य रस समुद्र की प्रतिक्षण वृद्धि की भी सूचना करी अथवा परिहास्य रस के समुद्र हैं ऐसो हास्य रस प्रकट करें हैं जामें ब्रजभक्त जीत नहीं सकें हैं अथवा जब श्रीजी पधारवे की प्रतिज्ञा कर संकेत के संध्या समय में न पधारते भये फिर प्रातःकाल पधारें तब श्री स्वामिनीजी तो मान कर विराजें हैं बोलें नहीं हैं देखें भी नहीं हैं तब हांसी के वचनन सूं ऐसो हास्य रस प्रकट करें हैं जामें मग्न भयी थकी प्रथम भये भी विरह दुःख कूं विस्मरण कर मान आदि कूं दूर कर भीतर और बाहिर भी अनुराग भरी होय जाय हैं ताकूं स्मरण कर कह्यो **परिहासरसार्णवः** । श्री स्वामिनीजी ने हास्य रस के समुद्र भाव कूं कह्यो तासूं वा हास्य रस में प्रकट होंते जे दंत हैं तिनकूं मणि भाव सूं सूचना कियो ऐसे ताप मिटायवे कूं हास्य सूं मिले रमण कर्त्ता श्रीजी कूं निरूपण करके वाके पीछे नहीं भई काम की पूर्ति जिसकी ऐसे हैं श्रीजी, तैसी श्री स्वामिनीजी कूं श्री हस्त में ग्रहण कियो विशेष रमण के लिये श्री यमुनाजी के तीर पै ले जात भये निकुंज निकुंज में रमण करत भये ताकूं स्मरण कर कहें हैं --

७० -- यमुनोपवन-श्रेणी-विहारी -- यमुनाजी के संबंधी जे उपवन विनकी जे श्रेणी कहिये पंक्ति तिनमें

विहार करवे वारे क्रीड़ा करवे वारे ऐसे श्रीजी हैं । तामें विहार दो प्रकार को है एक जल विहार, दूसरो स्थल विहार । तहां प्रथम तो केवल स्थल विहार कही है यहां श्री यमुनाजी संबंधी उपवनों में दोनों विहार हैं यासूं यमुनाजी में और वाके संबंधि उपवनों की पंक्ति में विहार करवे वारे हैं वृक्ष-वृक्ष प्रति रमण करें हैं तासूं श्रेणी पद कह्यो, और विहार है सो जैसे इच्छा होय तैसे मर्यादा रहित जो लीला वाकूं कहें हैं, तासूं चलत ठाडे होंते शयन करते बैठते भी लीलान कूं करें हैं यह भी सूचना करी । अथवा यमुनाजी के समीप में जो वन है वृन्दावन तामें जो पंक्ति है ब्रजभक्तन की तिनमें विहार करवे वारे हैं अथवा यमुनाजी के उपवनन के संबंधी जे वि कहिये पक्षी मोर, शुक, कोकिला आदि विनके हरण करवे वारे हैं क्रीड़ा के लिये शुक आदिकन कूं अपने साथ ही तहां सूं ले जावे हैं । अथवा यमुनाजी के उपवनन की पंक्तियों में वि जो काल तिनके हर्ता हैं सो तो श्रीजी के संग में संपूर्ण रात्रि आधे क्षण समान गुजरे है श्रीजी के बिना युगन के बराबर होय जाय है तहां यथार्थ में तो वे रात्रि बड़ी है पर श्रीजी के संग में तो वे छोटी होय जांय हैं जिस कारण सूं भगवान बड़े काल कूं दूर करें हैं जासूं इनकी तैसी बुद्धि है । तासूं ऐसे कह्यो । जब ऐसे स्वेच्छाचार लीला करें हैं तो ब्रजवासी कैसें नहीं जानते होंगे तहां कहै है --

७१ -- ब्रजनागरः -- सम्पूर्ण ही ब्रज में श्रीजी ही नागर हैं चतुर हैं स्वच्छंद लीला कूं भी करके अपनी

चतुराई सूं तैसे करें हैं जैसे और कोई जाने भी नहीं कोई जान जाय तो तैसे रस न होय तासूं परम चतुर है यही ही श्री भागवत में **नासूयनखल कृष्णाय** । वे सब गोप श्रीजी में असूया कूं वपरीत बुद्धि कूं न करत भये या श्लोक में निरूपण कियो है तासूं ही श्रीजी तो दिन में भी अपनी इच्छानुसार विन ब्रजभक्तन के साथ रमण करें हैं यह रस वार्ता कोई एक महाभाग्यवान् जानेंगे अथवा ब्रज जे ब्रजभक्त गोपीजन विनमें ही काम लीला में बंध आदिकन सूं अत्यन्त चतुर हैं औरन के आगे तो मुग्ध जैसे हैं यह भाव है । अथवा प्रथम जैसे और कोई गोपी के साथ यमुनाजी के उपवनों में वृक्ष वृक्ष प्रति विहार करते श्रीजी ब्रज सूं दूर गये होयगे तब कैसे अब ही पधारेगे याके लिये कहें हैं **ब्रजनागरः** । श्रीजी तो ब्रजनगर संबंधी ही है सदा ब्रज में ही विहार करत हैं और कहूं भी नहीं जाय है । तब तो मिल ही जायेंगे काहे कूं तुम दुःखी होय रहे हो तहां कहें हैं --

७२ -- **गोपांगनाजनासक्तः** -- गोप संबंधी जे अंगना वेई ही हैं दास्य भाव वारी, विनमें ही आसक्त है, तासूं विनकूं त्याग के कैसे मेरे समीप आवेंगे यह भाव है । तहां कोई कहे के तुम भी तैसी हो तिनसूं भी अधिक हो सो कैसे विन गोपिन में ही श्रीजी आसक्त हैं तुमारे में नहीं हैं या शंका कूं दूर करवे कूं जनपद कह्यो सो वे गोपीजन दासीभाव कूं प्राप्त हैं अभिमान रहित हैं, तासूं तिनमें ही आसक्त हैं, मेरे में तो वाके संगम

रस के मद सूं अभिमान होयवे सूं, मेरे में तो तैसी प्रीति नहीं करें हैं । यासूं ही कोई कहे के तुम भी गोपी हो विनसूं अधिक भी हो और श्रीजी गोपिन में भी आसक्त हैं सो तुमकूं ही शीघ्र ही आनके मिलेंगे, तासूं तुम काहे कूं दुःखी होवो हो, याको भी समाधान होय गयो के वे दासी भाव वारी है, मेरे में मान है तासूं मिलनो कठिन है और जन पद कह्यो ताको और भी भाव है जन शब्द पुल्लिंग है तासूं वे गोपीजन बहुत हैं और पुरुष भाव कूं प्राप्त हैं सो वात्सायन ऋषि ने भी कामसूत्र में लिख्यो है -- **रसाधिक्यात् स्त्रीपुंभावमापद्यते** । रस के अधिक होयवे सूं स्त्री पुरुष भाव कूं प्राप्त होय है तासूं यदि श्रीजी कोई समय में आवन की इच्छा भी करे पर वे नहीं आवन देंगी, और श्रीजी तो विनके वश में हैं, विनकूं उल्लंघन करके नहीं आवेंगे, यह जनपद को भाव है और विनमें आसक्त हैं तासूं स्वयं भी श्रीजी विनकूं नहीं त्याग कर सके है यह भी आसक्ति पद सूं सूचना करी, और विनके साथ आवें यह बात तो होय नहीं सके है, काहे कूं वे तो रसावेश सूं पुरुष भाव कूं प्राप्त हैं यह भाव है सो अति गोप्य है तासूं ऐसी भाव वारी के साथ और स्थान में नहीं गमन होय सके है, काहे कूं के रसाभाष करे है और वे गोपीजन अपने पति आदि कूं त्याग कर याकी दासी भाव कूं प्राप्त भई है तासूं भी श्रीजी विनमें आसक्त हैं । यह भाव जनायवे के लिये गोप संबंध को निरूपण कियो और श्रीजी सब प्रकार सूं आशक्त न होते तो महाकष्ट

होतो, कहूं भी आशक्त होये तो कोई दिन मेरे में भी आशक्त होवेंगे । या आशा रूपी लता को आश्रय, कदंब रूप आशक्ति को निरूपण कियो । ऐसे श्री स्वामिनीजी के कहवे में कोई सखी कहे के आप आज्ञा करें श्रीजी कहां हैं यदि ऐसे भी हैं तब भी मैं उनकूं बुलाय लावुंगी । तहां श्री स्वामिनीजी आज्ञा करें हैं के --

७३ -- वृंदारण्यपुरंदरः -- वृंदावन के पुरंदर कहिये इंद्र हे कहा के स्वामी है इंद्र कहा के स्वामी तो प्रसिद्ध नहीं होय है तासू यहां मेरे कहने की अपेक्षा नहीं है सो वृंदावन में गई तुम वाकूं स्वयं ही जान लेवोगी यह भाव है वृंदावन के कहवे सू स्थल की सूचना करी और तामें विशेष न कहवे सूं नाही भी करी यह श्री स्वामिनी जी कौ चातुर्य है जैसे इंद्र त्रिलोकी पति भी है तथापि देवलोक में रहे है तामें भी अपने लोक में रहे है अपने लोक की जे स्त्री तिनसू सेवा जिनकी होय रही है ऐसो रहे है तैसे श्रीजी भी अनन्त कोटी ब्रह्माण्डन के पति भी है तथापि गोकुल में भी तैसे ही वृन्दावन में भी जहाँ स्त्रीन की मुख्यता है तहां तो गोपीजनन के साथ विहार करे हैं यह हृदय है देवलोक मात्र में दुःख नहीं है तामें भी इन्द्रलोक में तौ निरन्तर ही दुःख नहीं तासूं सम्पूर्ण गोकुल सुखी है । वृन्दावन तो विशेष कर ही सो मेरे में दुःखी होय सो उचित नहीं तासूं दर्शन आदि के दान सूं दुख कूं दूर करो यह भाव है तहां कोई कहे या प्रकार सूं तो तुमारे में तो दुःख कूं अभाव ही चहिये तहां कहें हैं सत्य है, यह रीति तो लौकिक

वैदिक मर्यादा में है लोक वेद सूं अतीत जो है वामे सुख दुःख की यह रीति नहीं है ताकूं दिखावे हैं स्वर्ग में तो केवल पुण्य सूं सिद्ध भयो शरीर है तासूं तहां सुख ही है दुःख की प्राप्ति नहीं है । काहे कूं के दुःख का साधन जो पाप वाके संग्रह के अभाव सूं यहां तो -- **नराणां क्षीण पापानां कृष्णे भक्तिर्जायते ।** या वचन सूं पाप मात्र के अभाव में रही भगवान की भक्ति लाभ कह्यो है तासूं यहां दुःख जो है सो पाप कृत नहीं है दुख है सो पाप सूं होय है तामें लौकिक वेदिक उपाधिक ही है ऐसे पुण्यन सूं सुख होय है सो यहाँ सुख भी पुण्य कृत नहीं जाननो, तासूं या अत्यन्त अलौकिक प्रमेय मार्ग में सुख और दुःख है तो श्रीजी के संयोग-वियोग सूं ही होय है पुण्य पाप कृत लोक वेद रीति सूं नहीं जाननो यह हृदय है यही प्रसंग श्री भागवत में भी -- **आसाम होच्चरणरेणु जुषामहंस्या ।** या श्लोक में **स्वजन मार्य पर्थंचहित्वा** या पदन सूं निरूपण कियो है के यहां ब्रज भक्तन कूं सुख दुःख है सो लोक वेद सूं न्यारो है काहे कूं के विन ब्रज भक्तन ने लोक वेद कूं त्याग कियो है या ही सू उद्धव जी ने प्रार्थना करी है "के इन ब्रजभक्तन की चरण रज में सदा परै तैसो जनम मोकूं मिले ।" यदि यहां को सुख दुःख कर्मन सूं होय तो कर्मन सूं ही संयोग-वियोग सूं भये सुख दुःख वारो जनम कूं सिद्ध कर लेवतो न तु ऐसे जन्म के लिये ही प्रार्थना करतो तासूं थोरे ही कहवे सूं रसिक तो समझ ही जायेंगे विस्तार सूं अलहै

और वृन्दावन मे श्रीजी हैं स्वच्छंद रमण करे हैं तामें किंचित भी बाधक नहीं है किन्तु सम ही भोग में साधक है जैसे इंद्र कूं स्वर्ग के सम्पूर्ण पदार्थ साधक है तैसे यह पुरन्दर पद सूं सूचन करी तहां कोई कहे इतने विचार में तैसे महासुख दायक रसिकराज के विरह में प्राणन की स्थिति का प्रकार सूं है तहाँ कहे हैं -

७४ -- आभीरनागरीप्राणनायकः -- आभीर जे अहीर गोपविन संबंधि जो नगर गोकुल तामें वसवे वारी जो स्त्री गोपी अति चतुर, मन के, जे प्राण, विनके नायक हैं, रक्षक हैं, तासूं वा श्रीजी की इच्छा सूं ही प्राणन की स्थिति है, न के मेरे प्रयत्न सूं है यह भाव है । और गोकुलाधीश सबके राजा जैसे नियामक हैं पालक हैं अपनी आज्ञा में राखवे वारे हैं तामें अस्मदादिकन के प्राणन के भी रक्षक हैं, ऐसे अपने उत्कर्ष की भी सूचना करी, तासूं अन्तरंग भाव भी कह्यौ ताकूं दिखावे हैं के जैसे देश को पालक राजा ता देश में रहे है और वाकी पालना करे है तैसे श्रीजी हमारे प्राणन मे स्थित भये थके आप ही हमारे प्राणन कूं पाले है यह अर्थ है और सहित क्रोध और हीनता के कहे हैं के ''आभीर नागरी'' जे गोपी विनके प्राणन के नायक कहा के ले जाने वारे जो प्राणहर्त्ता हैं सो कैसे प्राणन की स्थिति में साधन जो अपनो संयोग संग सुख वाकूं कैसे करेंगे यह भाव है, तासूं श्रीजी ने हमारे प्राण अपने में ही ले लिये हैं । और आप तो मेरे हृदय में ही विराजे हैं तासूं प्राणन कूं बाहर निकसनो नहीं होय है, यह

भाव सूचना करी, याही सूं ही ब्रजभक्तन कूं ही नागरी भाव कह्यो सो लोक में चतुर के पास रक्षित जे प्राण विनकूं हर लेवे है ऐसे चतुर श्रीजी हैं, यह भी सूचना करी । ताही सूं ही श्री भागवत में कह्यो है -- ''जे दुर्ग में रहें हैं तिनको जीतनो महा कठिन है वामें भी जल दुर्ग में रहते होंय, वामें भी भली प्रकार प्रकटे होंय, और प्रभु होंय वामें भी प्रकाश वारे समय में, और शीत आदि उपद्रव रहित काल में स्थित होयें । ऐसे देश काल और स्वरूप आदिकन सूं जिसकूं चुरावनो न होय सके तैसे पुरुष सूं कहा के, शरद ऋतु में जल में भली प्रकार प्रकट भये समर्थ परम शोभावान कमल सूं वाके भी उदर में रहवे वारी जे शोभा वारे प्राणन के रक्षक हो'' और कोई भी मेरे प्राणन को रक्षक नहीं है या अभिप्राय सूं **आभीर नागरी प्राणनायकः** । यह नाम कह्यो ऐसे कहने में भी अत्यन्त पीड़ा होने में काम सूं तो क्रम करके मृत्यु अवस्था तो शीघ्र होय है तासूं भी दुःख निवृत्त होय जाय पर श्रीजी तो अंत अवस्था कूं भी नहीं करें हैं और मिलें भी नहीं हैं । ऐसे यह काम सूं भी लोकोत्तर रीति है यह कहें हैं-

७५ -- कामशेखरः -- कामसूं भी शेखर रूप है अलौकिक रीति है अथवा कोई कहे के तुम तो काम की सेना रूप हो तासूं तुमारे प्राणन की रक्षा तवतक काम ही करेगो तहां कहे हैं के -- **कामशेखरः** । श्रीजी है सो काम के भी शेखर हैं अत्यन्त ऊँचे स्थित हैं वाके नियामक हैं तासूं हम सबकूं श्रीजी ने ग्रहण कर लीयो

है तासूं सो काम हमारो दर्शन ही है यह भाव सूचना करी अथवा जैसे सब लोक को शेखर रूप जो काम है सबकी चक्षुराग आदि मरण अंत अवस्था करे है तैसे श्रीजी काम के भी शेखर हैं तिस काम की भी तैसी अवस्था करें है अलौकिक भाव सिद्ध करे हैं अथवा प्रथम ही श्रीजी में जासूं आशक्ति भई है ता आशक्ति को कारण रूप जो नाम है ताकूं कहे है-- **कामशेखरः** कामदेव सूं भी अत्यन्त उच्च है सो तो कोटिकंदर्प लावण्य है करोड़न कामदेव के समान नही अथवा करोड़न कामदेव जो ब्रज भक्त तिनको सौंदर्य रूप है तासूं ऐसे श्रीजी के सौंदर्य सूं बसीभूत भई मैं ऐसी भई हूँ अब कहा करूँ यह भाव है अथवा काम कहिये -- **काम नाम मनोरथः** तिनके भी शेखर हैं अत्यंत दूर में स्थित हैं । मनोरथ के हूँ विशयन ही सो तो मनोरथ को न होने को भी भास मान तो होय है पर श्रीजी के सौंदर्य आनंद आदि तो मनोरथ के हूँ विषय नहीं हैं काहे कूं के अत्यन्त अलौकिक हैं तैसे कह्यो भी है -- **मनोरथांत प्रियः ।** मनोरथ को है अंत जासूं ऐसे श्रीजी कूं प्राप्त भये अथवा काम जो है तृतीय पुरुषार्थ कामक्रीड़ा तिनमें शेखर हैं अत्यन्त चतुर हैं ऐसे स्थल बिहार के कहने में जल विहार को स्मरण भयो तामें जब कोई दिन कोई समय में स्वामिनी जी ताको ग्रह कार्य सूं अथवा कोई प्रतिबंधक सूं बाधा होयवे सूं श्रीजी के समीप पधारनो न होय सक्यो तब स्नान आदि जल कार्य की मिस सूं अथवा आज तो मैं पार ही जाऊँगी या मिस

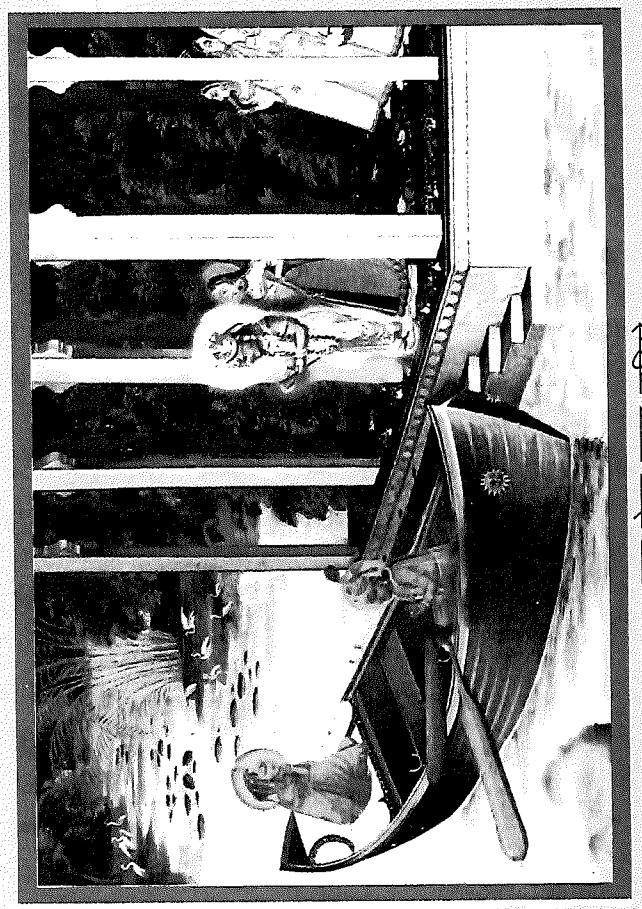

काम शेखर यमुना नाविको

सूं श्रीजी कूं श्री यमुना जी के तट में ठाड़े भये हैं ऐसे सखीन सूं निश्चय कर जब श्री यमुनाजी पै पधारे तहाँ तो श्री स्वामिनीजी कहत ही नाव पे नाव वारो पार पहुँचावनों वारो होयके मिस सूं विराजे हैं ऐसे श्रीजी के दर्शन आलिंगन आदि सूं चिर काल के विरह ताप कूं दूर करत भई तेसे अब भी ताप वान है ताके मिटायवे कूं प्रथम अनुभव करे भये ही नाम कूं सहित मनोरथ के कहे हैं ॥

७६ -- **यमुना नाविको** -- श्री यमुनाजी में नाविक रूप हैं नाविक हैं सो नोका साधन सूं अपनी आजिवका प्राण धारण करे हैं सो श्रीजी भी नौका सूं ब्रज भक्तन के संगम रस कूं अनुभव करें है यासूं जैसे ब्रज भक्त श्रीजी के विरह अवस्था सूं विकल भये श्रीजी के संयोग के लिये अनेक प्रकार प्रकट करे हैं तैसे श्रीजी भी अपने प्राण रूप ब्रज भक्तन के संयोग के लिये अनेक प्रकार विशेष करे हैं और यहां घाट विशेष कह्यो नहीं है सामान्य यमुना जी में केवल विनोद के लिए ही ऐसे नाविक रूप होय हैं यह सूचना करी । अथवा प्रथम **काम शेखरः** यह नाम कह्यो जो लीला वाके स्मरण में अत्यंत पीड़ा भई है तब यह चिंता भई के कब या दुःख समुद्र कूं तरूँगी, तहाँ तरवे को साधन रूप नौका है वाके स्मरण मात्र में ही प्रथम अनुभव कर्‌यो जो श्रीजी को श्री यमुना जी में नाव में नाविक रूप सो सुख ताको स्मणर आयो तासो यह दुःख समुद्र में पार ले जाने वारे तो श्रीजी ही हैं और कोई ही नहीं है

या अभिप्राय सूं नाविक भाव कह्यौ । ऐसे प्रथम कहे ही श्रीजी सूं भयो जो अपनो संगम ताकूं कहे कर वाके पीछे श्रीजी के नाविक भाव कूं जान के सब ब्रज भक्त तहाँ पधारे हैं तिन सबन के साथ ही ऐसी लीला कूं श्रीजी करते भये वाकूं स्मरण कर कहे हैं --

७७ -- गोपी पारावार कृतोद्यमः -- गोपी संबंधि जो पारवार है परलीपार और यहाँ को पार तामें कियो है उद्यम जाने ऐसे श्रीजी है यहां यह अभिप्राय है जो गोपी जन यमुना जी के तट पर आये हैं विनके मध्य में कोई ब्रजभक्त नये आये हैं सो श्रीजी के और गोपिन के आपस में प्रीति संबंध कूं नहीं जाने हैं तासूं श्रीजी सूं प्रीति वारे ब्रज भक्तन की इच्छा यही है के जा प्रकार सूं यह गोपी नहीं जाने तैसे कर्‌यौ चहिये । सो ऐसे अपने प्रिय ब्रजभक्त के हृदय कूं जानके प्रथम ही नई पधारी गोपी के पार पहुँचाने में ही उद्यम मात्र करत भये पीछे श्री यमुनाजी के मध्य में ले जायके तिनकूं भी अपनी लीला के वश अपनी करके तहां ही इच्छानुकूंल रमण करते भये वाही सूं ही उद्यम मात्र को निरूपण कियो न के पार उतार को भी कह्यौ और यत्न करके जो आरंभ कियो जाय वाकूं उद्यम कहें हैं तासूं जो गोपी नाव में चढ़वे में समर्थ नहीं हैं मुग्धा हैं विनकूं अपनी उत्संग में (गोद में) करके भी नाव में चढ़ावे हैं यह सूचना करी यासूं ही ब्रज भक्त की लीला में ही श्रीजी कूं उद्यम है और कहूँ में नहीं है अथवा कोई एक गोपी कूं परले पार में संकेत स्थल

है और कोई को उरे के पार में संकेत स्थल है तासूं गोपी संबंधि जो परलो पार और उरलो पार तामें गमन वास्ते कियो है उद्यम जिनो ने ऐसे कष्ट सूं होयवे वारे पार कूं उद्यम निरूपण कियो श्री जी इनके अर्थ न होयवे के कार्य भी करे हैं तासूं तबतो ऐसे श्रीजी अब काहे कूं तैसे नही हैं ऐसे सहित उपालंभ के दीनता प्रकट करी अथवा गोपी रूप जो पारावार है रस को समुद्र है ताके अर्थ कियो है उद्यम कहिये प्राकट्य आदि जाने सो कह्यौ है -- **ब्रजवनोद्यम च अव्यक्तं भगवान ब्रज-जनार्तिहर ।** इत्यादि वचन सूं ब्रज की आर्ति मिटायवे कूं श्रीजी को प्राकट्य है ऐसे श्रीजी सबके मनोरथ कूं पूरण करे हैं यह निरूपण करकें अब तिनसूं भी अपने में श्रीजी के अधिक अनुराग कूं वर्णन करे हैं --

७८ -- राधावरुंधनरतः -- राधा को जो अवरुंधन कहिये निरोध तिनमें ही रत कहिये तत्पर है या समय श्री स्वामिनी जी कूं श्रीजी की लीला चिन्तन परायण होयवे सूं अपनी सुधि नाही हैं तासूं जैसे और सखीन को होय तैसे अपने नाम कूं भी कहत भई हैं -- तहीं विचार सुं कहती तो -- **पदवरुंधनरतः ।** मेरे रोकने में परायण है ऐसे कहती तासूं अपने स्वरूप की हू सुधि भूल गई हैं और रोकनो तो जब श्री स्वामिनीजी श्रीजी के मिलवे के लिए दिन में श्रीजी के अर्थ भावात्मक सेव, मनोहर बूंदी के लड़वा, मोहनथार, बूँदी, गुंजा, शकरपारा आदि पकवान और शिखरिण औट्यो अति मीठो दूध ताम्बूल चन्दन माला आदि कूं ऐकांत में लेकर

दधि विक्रय की मिस सूं वन में श्रीजी के निकट कितनी एक सखीन के साथ पधारे हैं तब वन में गोपन के सहित विराजे श्रीजी गोपन सूं दुरायवे के लिए दान की मिस सूं सब कूं ही बुलावे हैं तब और सखीन सूं तो थोरो-थोरो इच्छानुकूंल दधि आदि लेकर विनकूं तो विदा करे हैं तब श्री स्वामिनी जी के अर्थ कहे हैं के ये तो बहुत पदार्थ माल लेके जाय हैं यह बहुत देवेंगी तो तब भेजूँगो ऐसे विन गोपन के आगे कहते श्री स्वामिनीजी सूं पूछें हैं दिखाओ तिहारे पास कहा-कहा वस्तु है तब परम चतुर शिरोमणि श्री स्वामिनीजी कहे हैं मैं तो न कछु दिखाऊ हूँ न कछू देऊ हूँ ऐसे गूढ़ अभिप्राय सूं कहती मंद मंद हंसती प्रिया वा श्रीजी के श्री मुख कूं देखत है वा समय के रोकने कूं स्मरण कर कहत हैं -- **राधावरुंधनरतः** । तासूं वन में केवल श्री स्वामिनीजी के अर्थ ही विराजे हैं, फिर गोपन के प्रति श्रीजी आज्ञा करे हैं यह तो महा हठीली गोपी है तासूं इनकूं में एकान्त में जब तक समझाऊँ हूँ जासूं यह दान देवेगी तब तक तुम गायन के पीछे जाओ आछी रीति सूं उनकूं चराओ जासूं दूर न चली जावे ऐसे विनकूं भेज के या श्री स्वामिनीजी कूं सघन कदंब निकुंज में ले जायके तहां श्री स्वामिनीजी की सुंदर भावात्मक सामग्री कूं अंगीकार कर स्वतंत्र होय यथा इच्छित तहां ही रमण करत भये ताकूं स्मरण कर कहे हैं के --

७९ -- कदंव वन मंदिरः -- कदंब वन है मंदिर

श्री आचार्य जी स्वामिनी जी को मनाते हुए

जिनको ऐसे श्रीजी हैं । बहुत संस्कार जामें भये होय सो तो नाना विधि रंगन सो लीपनो सुंगधित जल सो छिरकाव करनो धूप अतर आदिन सूं सुगंधित करनो और अनेक प्रकार के रस उद्दीपक चिह्न जामें होंय ताकूं मंदिर कहे हैं तासूं यहाँ भी प्रातः काल ही श्री स्वामिनीजी सूं भेजीं गईं जे दूती सखी विनने अनेक प्रकार के पुष्प पल्लव मालान सूं शय्या आसन चंदोआ द्वार तोरण भूमि सब सजाय राखी है यह सूचना करी तब वाके पीछे दूती भी श्रीजी कूं वहां पधार्यौ जान कर वे सब ही अंतरंग लीला योग्य तहाँ आवत भई तब विन सबन कूं अमृत सूं आधिक्य ताको जो सुख अमृत सूं भी नहीं होय है ता सुख कूं देयवे सूं है सो यही है -- **सिचांगनः** । या श्लोक में औरत्वदंगसंगामृत मात्र । या श्लोक में **तावत्व तंनुज्वरे** या गीत में भी आपके वचनामृत को अपने सर्वकाम सर्व ज्वर ताप मिटायवे को मुख्य कारण कह्यो है, और देव संबंधी अमृत सूं भी जा कामदेव को जीवन नहीं भयो यहां ताको भी जीवन स्पष्ट है और उक्ति में शोभनता कही सो तो श्रीजी जब उच्चारण करें तब थोरे थोरे प्रकट भये जे दंत विनकी जो प्रकाश पंक्ति है सो नवीन मणिमय तोरण की शोभायमान है तासूं शोभन है मंगल उच्छव में ही तोरण बांधी जाय है सो श्रीजी को वचन भी मंगल रूप है ऐसे सुन्दर उक्ति के स्मरण में जब कोई एक समय ब्रजभक्तन के विरह सूं मूर्छित होने में श्रीजी आयकर मधुर वचनन सूं मान मनाय के फेर

बहुत प्रकार सूं रमण करत वाकूं स्मरण कर कह्यो है --

८० -- ब्रजयोषित्सदाहृद्यः -- ब्रजयोषित कहवे सूं कोई के नाम विशेष न कहवे सूं अंतरंग लीला में स्थित सगरी ही गोपी तहां पधारीं यह जाननो तैसे वे जे ब्रजभक्त हैं श्रीजी के सदा हृदय संबंधी हैं तहां स्थित होय सदा रमण कर्त्ता हैं अथवा ब्रजभक्तन कूं सदा हृद्य कहा के प्रिय हैं तासूं रमण अनंतर भी प्रथम सूं भी अधिकी आर्त्ति ब्रजभक्तन में श्रीजी के अर्थ होय है रमण के अनंतर तो तैसी प्रीति न होयगी यह शंका दूर भई अथवा वे ब्रजभक्त सदैव प्रिय हैं श्रीजी कूं तासूं आपस में निरन्तर प्रीति होयवे सूं कदाचित् भी वियोग नहीं है यह सूचना करी और ब्रजयोषित है सदा हृदय में जिनके यासूं विपरीत रमण कभी सूचना करी तासूं तहां रमण लष्यो जाय है तहां कोई समय कौतुक के लिये विन ब्रजभक्तन की इच्छा सूं और अपनी इच्छा सूं बिन गोपिन की ही नीबि आदि वस्त्र पहरे हैं ब्रजगोपी वेश कूं भी धारण करें हैं यह जतायवे कूं ब्रजयोषित पद कहेके मध्य में सदा ऐसे पद कह्यो नहीं तो सदा पद कूं पहले ही कहते यह वे अत्यंत ही गोप्य है जासूं ऐसे कर निरूपण कियो ऐसे निरंतर प्रीति को रूप करत अंतर में कूं कहेकर सदैव ऐसे रमण में हेतु कूं कहते वाह्य धर्म कूं कहें हैं --

८१ -- गोपीलोचनतारकः -- गोपी जे सर्व व्रज भक्त विन के जे नयन तिनके तारा रूप है जैसे गोलक होय

भी पर तारका आच्छादित होय तो कोई वस्तु भी नहीं दीखे तैसे श्रीजी निकट न होय तो विन ब्रज भक्तन कूं अपनो देखवो भी नहीं है यासू ही सदैव अंतर वाहिर स्थित होयके रमण करे है यह तो उपलक्ष्ण है, कहा के संपूर्ण इंद्रियन के विषयन में भी ऐसे ही जाननो। अथवा उन गोपीन के लोचन के तारा रूप ही श्रीजी है। अथवा गोपीन के लोचन तारक है उद्धार करवे वारे हैं सो तो विरह में नयनन कूं जल समुद्र में जैसे डुबनो होय है तैसेहोय है तामें श्रीजी के संयोग सू वा जल समुद्र तीर कूं प्राप्त होय है तासू उद्धार कहे, यासू डूबते कूं देखके स्वयं समर्थ होय ताके परायण भी होय तो ऐसो कोन होय है जो क्षण एक भी बिलंब न करे, काहे कूं के एक क्षण के विलंब में तो विनको नाश होय है तासू विरह समुद्र में डूबती जो मे मेरी उपेक्षा, तुम कूं उचित नहीं है यह भाव है, अथवा प्रथम स्वरूप निरूपण में श्रीजी के मुख कूं चंद्र भाव कह्यो सो चंद्र है तारिका सहित ही होय है तासूं इन चंद्रमा के सहित गोपीन के जे लोचन, वे ही तारका है, यासूं सदैव दर्शन देवे हैं ऐसे सूचना करी, और प्रत्यक्ष नही भी होय सो यदि ऐसे है चंद्र और तारा, दोनों ही नहीं होय है तैसी यहां भी श्रीजी के मिलने में तुमारी अंतिम अवस्था हो जाय सो तुम कैसे रह सको और श्रीजी भी कैसे और ठिकाने में रह सके, तहां कहें हैं के --

८२ -- जीवनानंदरसिकः -- जीवन रूप है आनंद जिनके ऐसे है और रसिक है अथवा जीवन रूप आनंद

में रसिक है रस के जानवे वारे है तासू श्रीजी को जो आनंद है सोई ही जीवन रूप है सो तो प्रथम हीयो हृदय में स्थित है तासूं ही मेरो जीवन मात्र होय है न के सुख होय है औरन के दुख को अभाव होय है काहे कूं के संगम को जो अभाव सो बली होवे है सो कह्यो भी है गीत गोविंद में **जीवति परमिह तव रति कलया नाथ हरे०**[1] दूती श्रीजी के आगे विनय करे है सो तो केवल तुमारी प्रथम अनुभव करी कला के ध्यान सू ही जीवे है और जैसे विरह सू तप्त भई कोई जो प्रिय के संगम में महा रस होय है तैसे सदा संयोग में भी रस नहीं होय है ऐसे तिस अर्थ ऐसे तिस रस विशेष के अर्थ रसिक भाव सू श्रीजी की स्थिति है ऐसे दोनों प्रकार की स्थिति में दोनो हेतु कहें हैं जीवनानंद हैं और रसिक हैं यद्यपि श्रीजी को संगम सदैव ही रस सुख को बढ़ायवे वारो है तथापि रस मार्ग में स्थित है श्रीजी सो रस मर्यादा कूं स्थापन कर कहै है

८३ -- **पूर्णानंदकुतूहलः** -- जल स्थल क्रीड़ा आदि सू पूर्ण आनंद है जिनमें ऐसी जे गोपी जन तिनमें है कुतूहल विहार विशेष सों, क्रीड़ा के पीछे फूलन की गेंद बनाय के फेंके है गोपी जन श्रीजी प्रति, तासूं सहित हांसी के महा आनंद भयो वाकु स्मरण कर कह्यौ अथवा अवज्ञा पूर्वक सहित हांसी की जो लीला वाकूं कहें हैं कुतूहलता पूर्ण आनंद, कुतूहल में भी है आनन्द जिनको, ऐसे श्रीजी हैं अथवा हमारे में पूर्ण आनंद है

१. जयदेव गीतगोविन्दम् सप्तम् सर्ग श्लोक सं. ३ ।

ऐसे जानवे बारे ये ज्ञानी हैं कुतूहल में कहो के हांसी में जिनके गोपी जन के साथ विराजे ज्ञानीन पर हांसी करे हैं के कहा यह शून्य कूं ध्यान करे हैं ऐसे हंसे हैं ऐसे सब सू अधिक भाव निरूपण कर क्रीड़ा के पीछे बैठे भये श्रीजी कूं स्मरण कर कहे हैं --

८४ -- **गोपिकाकुचकस्तूरीपंकिलः** -- गोपी जनन के कुच संबंधी जो कस्तूरी तिस कर पंकिल है कस्तूरी पंक होवनो तो महासुरत में श्रम जल सूं होय है यासूं श्रीजी में भी श्रम की सूचना करी तासूं श्रम जल सूं भरे भये अंगन वारे जब श्रीजी विन गोपी जनन की सभा में विराजे है तब अनिर्वचनीय सौंदर्य को अनुभव भयो तासूं ऐसे कह्यौ, अथवा जब संध्या समय पधारवे की प्रतिज्ञा कर और ब्रज भक्त के घर रात्रि कूं व्यतीत (गुजार) कर प्रातःकाल आयके कोई मिस सूं रात्रि के रमण कूं छिपावते, जे श्रीजी, विनके हृदय कूं दर्शन कर, तामें प्रकट रमण को चिह्न, जो गोपिन के कुच सम्बन्धी कस्तूरी को पंक वाकूं देख के रात्रि में और गोपिन के रमण कूं निश्चय करके बाकूं स्मरण कर यह कह्यौ अथवा गोपिन के कुच हैं कस्तूरी सूं पंकिल जा करके ऐसे श्रीजी हैं । गोपी जनन के कुचन में प्रथम कस्तूरी पत्रन की रेखा सूक रही जब श्रीजी ने महा रमण कियो वाके श्रम जल सूं गीले भये, जब आलिंगन आदि कियो तब तो कुच कस्तूरी के पंक वारे ह्वै गये, अथवा श्रीजी कूं रमण में भयो अति श्रम तासूं हृदय में भी स्थित रह्यो गोपिन के कुच संबंधि कस्तूरी

को पंक, बहुत श्रम जल के मिलवे सूं, सर्व अंगन में प्राप्त भयो, तासूं असंख्य गोपिन के साथ रमण की सूचना करे हैं ऐसे वा रमण सूं भी श्रीजी में एक रस हैं वाकूं स्मरण कर कहे हैं --

८५ -- **केलिलालसः** -- कामकेलि में लालस वारे है कहा के इच्छा की पूर्ति रहित है जो जामें लालसा वारो होय सो तिस अर्थ कूं जिस किसी प्रकार सूं साधे है तैसे श्रीजी भी यह काम केलि में लालसा वारे हैं। जिस किसी प्रकार सूं याकूं सिद्ध करे हैं तासूं सदैव काम भाव वारे हैं और काम केलि में प्रयत्न वारे हैं तासूं सदैव आनन्द दायक है। अथवा बहुत प्रकार सूं रमण किये पर भी प्रिय के स्वरूप पद कूं दर्शन सूं ही प्रथम सूं भी अधिक लालसा उत्पन्न होय है ऐसे अपने अनुभव किये रस कूं स्मरण कर केलिलालसः काम केलि में है लालसा जा श्रीजी सूं ऐसे श्रीजी हैं। जहां भय होय तहां रस की उत्पत्ति नहीं होय है। यहां तो स्वच्छन्द रमण है यदि यहां कोई बहिरंग रस बोधक अनाधिकारी आय जाय अथवा याकूं जान जाय तो तब रस कैसे होय वा शंका कूं दूर करवे कूं कहें हैं --

८६ -- **अलक्षित कुटीरस्थो** -- किसी कूं भी लक्ष हू नहीं है, देख्यौ कहां से होय, ऐसे जे कुटीर कहिये लता गृह तिनमें बिराजे हैं ऐसे श्रीजी है तासूं कुछ देरी देखते भये यदि ढूढ़ते हू वे आवे तथापि वा स्थल कूं जान नहीं सके हैं तासू रसाभास कदापि नहीं होवे है

श्री आचार्य जी, श्री स्वामिनी जी को प्रभु के पास निकुंज में पधराते हुए

यह सूचना करी, वास्तव में वे गोप अपनी गोपिन कूं अपने निकट ही जाने है तासूं कछु भी चिंता नहीं है तैसे कह्यो भी है — **मन्यमानस्वपार्श्वस्थानित्यादि ।** अथवा जहाँ चारों ओर मध्य में विराजवे को स्थान, तहाँ तुम सब आवो मैं भी तहां आवुं हूँ ऐसे कहेकर गोपीन सूं प्रथम ही तहां जायकें एक घर में छिप के विराजते भये हैं तहाँ सब गोपिकायें आयके अपनी अपनी रहस्य कथा कूं आपस में करे हैं के श्रीजी जब मिलेंगे तब मैं ऐसे करूँगी मैं ऐसे करूंगी ऐसे कहती भई, श्रीजी को आवनो जिनने निश्चय कियो है सो निर्मयाद ही बिहार करे हैं तब कछुहिक देरी कर श्रीजी अचानक लीला सूं ऐसो सीत्कार करे हैं जासूं वे सब गोपी वाही क्षण में ही चुप होय जांय हैं, चकित नयन होय के कहें हैं के अरी सखि श्रीजी तो याही वन में ही है चलो देखो तो सही, ऐसे धीरे-धीरे कहवे लगीं, इतने में श्रीजी के देखने आदि सूं मेरे आवने में तूतो ऐसे करेगी ऐसे कहते भये थके उनके कहे अनुसार विनकूं आलिंगन चुंबन आदि करते भये हैं, तब उनको महासुख को अनुभव भयो ताकूं स्मरण कर कहें हैं कि अलक्षित भी होय और कुटीर कहिये लता घर वामें भी स्थित होंय ऐसे श्रीजी हैं, अथवा जब कोई समय श्री स्वामिनी जी शय्या आदि कूं बनाय रही है तब वाके पीछे भोग में मिली जो कोई एक गोपी वानें प्रार्थना करी, तब श्रीजी वाके प्रति असावधान भये थके कहा कि मानो श्री स्वामिनीजी कूं वहां न जानते थके कहे हैं "अरी

तू श्री यमुनाजी के तट पै चल मैं तहाँ आऊ हूँ और ठिकाने नहीं जाऊंगो'' ऐसे श्रीजी ने कह्यौ इतनों सुनके भीतर सूं ही श्री स्वामिनीजी कहे हैं मैंनै भी शय्या आदि तैयार कर राखी है जितने तक वह गोपी सब कछु तैयार करे हैं इतने तक यहां विराज के श्रीजी कृपा करेंगे, ऐसे का कु स्वर सों जब श्री स्वामिनी जी ने कह्यौ तब चकित भये ही तहां आयके अनेक प्रकार के चाटु वचन कहन लगे, तब श्री स्वामिनीजी कहें हैं ''तुम तो तहां जावो यमुना के तट पै वा गोपी को मन व्याकुल होयगो वाकूं प्रसन्न करो मेरे मन में तो व्याकुलता नहीं है मैंने तो इतनो कौतुक के अर्थ कह्यौ'' ऐसे कहती भयी स्वामिनीजी कूं बल सूं आलिंगन चुंबन अधर पान आदि सूं वश करके बहुत प्रकार सूं रमण करते भये ऐसे पहले अनुभव कूं स्मरण कर कह्यौ है, कि ''नहीं लखी है कुटीर में, लता घर में, स्थित स्वामिनी जी जाने'', ऐसे श्रीजी हैं, तासूं तब तो अपने आग्रह सूं सब कुछ मेरे अर्थ ही करत भये हो अब तो मेरे ही आग्रह सूं तैसे करो यह भाव सूचना कियो । तहां कोई कहे के, ''कियो है जाने रमण बहुत स्त्री जिनकी प्रिय, ऐसो जो तिहारो प्रिय, कोई समय अवश्य आवेगो । तब तुमकूं धैर्य कर्यो चहिये'' ऐसे कहती सखी प्रति सखी कहै है -- अलक्षित लता घर तो स्वामिनी जी को ही है काहे कूं, तहां हेतु कहें हैं--

८७ -- **राधासर्वस्व-संपुटः** -- राधा को जो सर्वस्व है वाको सम्पुट है सम्पूर्ण ही श्री स्वामिनी जी को सम्पुट

रूप है अथवा जैसे कृपण पुरुष को सर्वस्व जो कछु सुवर्ण आदिक है वाकूं स्मरण करके सर्वदा रक्षा करे है क्षण एक वाकूं न देखे तो महा व्याकुल होय है तैसे राधा को जो सर्वस्व है प्राण इंद्रिय अंतःकर्ण, शरीर, धन, यौवन, सौंदर्य आदि सूं संपूर्ण श्रीजी कूं ही समर्पण कियो है ऐसी श्री स्वामिनी जी वा अपने सर्वस्व के संपुट कूं क्षण एक भी न देखके कैसे धैर्य कर सके याही सूं ही अपने लता घर कूं अलक्षित कियो है और इहाँ अपनो नाम लियो सो विरह में विकल दशा सूं अपनी सुधि नाही है तासूं आपकूं और सखी जानके राधा नाम लियो पहले जैसे समझनो और संपुट पद कह्यो वाकूं श्री स्वामिनीजी ही केबल सर्वस्व रूप कर जाने हैं और कोई नहीं जाने है यह भी सूचना कियो जाने संपुट कियो होय वोही वाकूं जाने हैं और नहीं तैसे जाने है यह भाव है । अथवा राधा है सर्वस्व संपुट रूप जिनको, ऐसे श्रीजी है । प्रथम करे भये अर्थ सूं उलटो अर्थ जाननो ऐसे अपने रमण कूं कहे कर जितनी गोपी वितनो स्वरूप धर रमण करके विराज वे के स्थान में आयकर सबके साथ विराजते भये वा क्रम सूं स्मरण करके कहें हैं --

८८ -- **वल्लवीवदनांभोजमधुपानमधुव्रतः** -- वल्लभ जे गोपी तिनके वदन अंभोज कहिये मुख कमल तिनके संबंधी जे मधुर सौंदर्य अमृत रूपी रस अधरामृत तिन करके मत्त हैं ता रस सूं और रस जाकूं विस्मृत है ऐसे मधुवृत कहिये भौंरा श्रीजी हैं, और यहां मत्त मधुव्रत

कह्यो तासूं विन गोपिन की सभा में विराज के विनके साथ गान कूं करें हैं यह सूचना करी । भौंरा मत्त होय तो गान ही करे है यह नियम है, और गोपिन के मुखन कूं कमल भाव निरूपण कियो तासूं जैसे केवल कमल भौंरा ही के योग्य है -- मधुव्रत कह्यौ, ताको भाव यह है जो वाको मधु को ही व्रत है मधु को ही भोग करे है और कूं जाने ही नहीं और मत्त होय है और कूं नहीं जाने है सो श्रीजी कूं मत्त मधु ब्रत कह्यो तासूं गोपीजनन के मुखं रूपी कमलन की सौंदर्यता, अधरामृत आदि मधु हैं श्रीजी बिनके ही भौरा हैं और गोपिन के भोग परायण हैं । या रस सूं लक्ष्मी आदिकन कूं भी गिने भी नहीं है ऐसी सूचना करी, जासूं मधुव्रत हैं और मत्त हैं तासूं मर्यादा को भी उल्लंघन न कह्यौ है और भौरा रूप कहवे सूं यदि ऐसी प्रिया तुम हो तो तुम कूं त्याग के और ठिकाने काहे कूं पधारे हैं यह शंका अब दूर भई काहे कूं के भौरा एक ठिकाने स्थित नही होय हैं ऐसे श्रीजी हैं पर मेरे कूं सदा रस होयवे सूं सरस कमल में भौरा आवे ही है तैसे श्री जी मेरे पास अवश्य ही पधारेंगे यह महाआशा रूप आश्रय सूं जीवू हू, और ठिकाने ठहरने में हेतु भौरा रूप कह्यो ही है और अंभोज पद कह्यो तासूं ब्रज भक्तन के अंग सुखद हैं शीतल हैं सुगंधित हैं कोमल हैं सरस हैं इत्यादि गुण सूचना किये अथवा ब्रज भक्तन के नेनन के चुंवन करवे सूं श्रीजी को अधर श्याम होय रह्यो है निकट सूं वाकूं देखके, भ्रमण करण, जाहूँ

में भौरा गोपिन के मुख कमलन की मधु सो मत्त भी रह्यो पर रस की आधिक्यता सू श्रीजी के अधर कूं ही प्राप्त भयो वाकूं स्मरण करके यह कह्यो ।। गोपिन के मुख कमलन की मधु सो मत्त भी, भौरा जो श्रीजी ही है ऐसे इहां श्रीजी के अधर में आमोद कहिये सुगंध, और गोपिन के मुख कमलन सू भी अधिक सुख को मधु भाव जाननो अथवा मधु पद सूं साधारण कमलन की मधु जाननी, तासूं गोपिन के मुख कमल में, मधु सूं मत्त भये है भौरा, जासूं ऐसे श्रीजी है, सो रमण के अन्त में पद्मिनी स्त्रीन की पद्म गंध गोपिन सूं प्रकट होवे है सो श्री जी के ये रमण के अनन्तर गोपिन सूं तैसे कमलन की सुगंधि प्रगट भई जासू साधारण कमलन की मधु सूं मत्त भी रहे सो भौरा सो विन कमलन कूं त्याग के यहा गोपिन के मधु पान करवे कूं आवे, सो भौरान कूं यहां आयवे सूं इहां गोपिन में साधारण कमलन सूं अधिक रसादि भाव की सूचना करी । अब और धर्म सूं भी श्रीजी कूं मधुब्रत रूप वर्णन करे हैं (निगूढ़ रसविर्त) निरन्तर गूढ़ कहिये गुप्त जो रस है ताके वित्त जानवे वारे श्रीजी है जैसे भौरा कमल नाल पत्र आदिकन कूं छोड़ कर कमल के भीतर जो गुप्त मकरंद तिस कूं ही पान करे हैं और तिस कूं ही जाने है तैसे श्रीजी भी यहां ऐसे बन्धन दान में यह रस होयगो ऐसे सम्पूर्ण गुप्त रस कूं जाने हैं । तैसे श्रीजी भी इहां ऐसे वंध करवे सूं यह रस प्रकट होयगो ऐसे संपूर्ण गुप्त रस कूं जाने हैं तासूं श्रीजी महारस

के भोक्ता और दाता हैं यह सूचना कियो, तहां कोई कहे के श्रीजी तो सम्पूर्ण गोकुल के ईश्वर है और सम्पूर्ण भय रहित हैं तो काहे कूं गुप्त होयके रमण करे हैं तहां कहें हैं --

८९ -- निगूढ़रसविद्गोपीचित्ताल्हादकलानिधिः -- गुप्त भाव करके जो रस है ताके जानने वारे श्रीजी है जैसे गुप्त भाव सूं रमण में रस होय है, तैसे प्रकट भाव सूं रमण में रस नहीं होय है या अर्थ कूं श्रीजी जाने है, तासूं तैसे करे है, यह भाव है । अथवा जब कोई समय में श्रीजी गोपी वेश धारण करके ऊपर महावस्त्र सूं मुख कमल कूं आच्छादन करके विन गोपिन के मध्य में जब विराजे हैं इतने में ही एक गोपाल श्रीजी कूं पूछत आवे है के श्रीजी इहां है तहां सब ब्रज भक्त उत्तर देवे हैं यहां तो और पुरुष हू नही (निगूढ़ रसविर्त) श्रीजी निरंतर गूढ़ है छुपे हैं जासूं गोपी न जान सकी और गोपी वेश धारण करवे सूं अनुभव कियो जो रस ताके जानवे वारे हैं ऐसे रति करवे वारे श्रीजी कूं निरूपण करके वाके पीछे श्रीजी श्री स्वामिनी के संग उपवन में पधारे और पुष्पन कूं वीनत भये, तिस लीला कूं स्मरण कर कहे हैं ।

गोपीचित्ताल्हादकलानिधिः -- गोपी के चित्त कूं आनंद करवे वारो है वन जाको ऐसे श्रीजी हैं -- वृक्ष वृक्ष में ही कोमल पत्र लताघर और जल विहार लिये तलाब और आवरण है श्रीजी के संग एकान्त में ठहरवे योग्य है विनकूं देखके ब्रज भक्तन कूं आनन्द

उत्पन्न होय है तासूं कह्यौ **गोपीचित्ताल्हादकलानिधिः**

अथवा निगूढ़रसविद्गोपीचित्ताल्हादकलानिधिः एक ही नाम समझनो तासूं निगूढ़ कहिये गुप्त रस के जानने वारी जो गोपी विनके चित्त कूं आनन्द देवे वारो है वन जाको ऐसे श्रीजी हैं । अथवा गोपी है चित्त में जिनके ऐसे श्रीजी के आनन्द कूं देवे वारो है वन जिनको, ऐसे श्रीजी और स्वामिनीन कों आपस में आसक्ती भई तब श्रीजी विचार करत भये जो कहां यह रमण कर्‌यौ चहिये, ऐसे विचारत वृन्दावन कूं देखके प्रसन्न भये ऐसे ताकूं स्मरण कर कह्यो, गोपी हैं चित्त में जिनके, ऐसे श्रीजी हैं सो कह्यौ है वृन्दावन गोवर्धन या श्लोक में यदि **गोपीचित्ताल्हादकलानिधिः** यह पाठ होयतो गोपिन के चित्त कूं आनंद देवे वारो है कला निधि चंद्रमा जासूं ऐसे श्रीजी है यदि श्रीजी मिले तो चंद्र भी सुखदायक होवे है नहीं तो विष रूप होय है । अथवा गोपिन के चित्त कूं आनन्द देवे कूं कला निधि कहा कि चंद्र रूप है वाके पीछे श्रीजी आप गोपिन के साथ क्रम सूं यमुनाजी के पुलिन कूं चारों और सूं देखके विचारत भये जो वन में निकुंज में प्रथम क्रीड़ा करे तासे पीछे यमुना तट में आयके सब मिलके बैठे तहां जल विहार कर्‌यौ चहिये । वन में क्रीड़ा करवे में विन गोपिन को आपस में दर्शन आदि नहीं होवे है । श्री यमुनाजी के तट में तो सो दर्शन भी आपस में होयगो यह विचार के अत्यन्त आनन्दित भये ताकूं स्मरण कर कहें हैं-

९० -- कालिन्दीपुलिनानंदी -- कलि जो कलह ताकूं

जो मिटावे वाकी जो कला सो कालिंदी ताको भी स्वाभाविक धर्म यही है जो कलह कूं मिटावनो तासूं गोपिन कूं आपस में पत्नी भाव नहीं है एसी यमुना जी को पुलिन तट वामे आनन्द देवे वारे हैं अथवा यमुना तट सम्बन्धी जो आनन्द है रास रूप तिसवारे श्रीजी हैं । अथवा यमुना तट है आनंद देवे वारो श्रीजी कूं, वाके पीछे एकस्वरूप सूं बहुत गोपिन कूं विलास कूं करत भये एक एक गोपी कूं एक एक स्वरूप सूं विलास करत भये है तासूं स्मरण कर कहे हैं --

९१ -- **क्रीड़ातांडवपंडितः** क्रीड़ा रूप जो तांडव है वामें पंडित है अत्यन्त चतुर है नियम रहित जो नृत्य वाकूं तांडव कहे हैं सो क्रीड़ा में तांडव के निरूपण करवे सूं कोई गोपी के साथ रमण करे हैं कोई एक निकट ठहरी गोपी कूं छोड़ के दूर ठहरी गोपी कूं पकरे हैं इत्यादि सूचना करी ऐसी रीति सूं विहार रस शास्त्र में भी कह्यौ है सो रस शास्त्र में श्रीजी पंडित है तासूं तैसे करे हैं । जा रीति सूं रस उत्तरोत्तर अधिक होय है, यह सूचना करी । अब वाके पीछे सब गोपिन के साथ रमण करते भये सो कहत हैं --

९२ -- **आभीरिकानवानंगरूपरंगभूमिसुधाकरः** -- आभीर कहिये अहीरन की स्त्री सो गोपी जन रूप जे नवीन काम की रंग भूमि है तिस संबंधि सुधाकर कहिये चंद्रमा है जाकी क्रीड़ा सूं सो प्रकाशित और आनंदित होवे है तिस लीला कूं करवे वारे श्रीजी हैं, और यहां काम कूं नवीन भाव कह्यौ है सो लौकिक काम सूं

यह काम भिन्न है, और आधिदैविक है, सो श्रीजी ही है सो नायक रूपी श्रीजी भी इन गोपिन में है गोपिन के अर्थ ही प्रकटे है अथवा महादेव सूं जर्‌यो जो काम वाको यहां प्रकट भयो याही सूं ही अनंग पद कह्यौ है याको विस्तार करके निरूपण (**ब्रजानंगनवांकुरः**) या नाम में कर आये है । रंग भूमि कूं रण भूमि कहें हैं और विलास भूमि कहें हैं तासूं इन रति रण भूमि में श्रीजी कुशल हैं अथवा आभीरका जे गोपी विनकी नवीन जे अनंग रण भूमि है, काम विलास की भूमि है, सो तो हृदय देश है, तिस सम्बन्धी जो सुधा अमृत रस तिनके आकर हैं स्थान हैं लोकिक चंद्र तो लोकिक सुधा को आकर रूप है । यह अलौकिक चंद्र तो ब्रज भक्तन के हृदय संबंधी जे अमृत रस ताके सुधा को आकर है स्थान है, अथवा गोपिन की नवीन जो कामरण भूमि कहिये हृदय देश है वामें जो सुधा कहिये, अमृत रस, ताके करवे वारे श्रीजी हैं । रणभूमि कूं नवीन भाव कह्यो तासूं कैशोर, यौवन को मध्य समय सूचन कियो तासूं प्रथम गोपीजन श्रीजी के दर्शन मात्र सूं ही रस शास्त्र में निपुण, कहा अत्यन्त चतुर भई हैं, याही सूं ही आभीरका पद प्रथम कह्यौ । अहीरन की स्त्री स्वभाव सूं मुग्धा होय हैं आगे विदग्धा हैं ऐसे कहेगें अथवा सामान्य क्रीड़ा कूं कहकर शय्यादिकन में विशेष विलास कूं कहें हैं आभीरका जे गोपीजन विन संबंधी जो रंग भूमि है, पुष्प आदि शय्या है, तिनमें सुधाकर है, दर्शन आलिंगन चुंबन रमण स्थल में अंधकार होय

तो रस सिद्धि नहीं होय यह शंका दूर भई तहां कहें हैं श्रीजी स्वयं चंद्र रूप हैं सो दीपक आदिकन की अपेक्षा नहीं रहे है, अथवा गोपिजनन की जे नवीन काम की रंग भूमि हृदय देश है तामें सुधा के निमित्त है कर जिनको, गोपिन के हृदय देश में जब श्री हस्त धारण करे हैं ताकूं स्मरण कर कह्यौ ऐसे श्रीजी के चातुर्य कूं वर्णन करत वा समय में ही प्रकाशित किये अपने चातुर्य कूं स्मणर कर कहें हैं ।

९३ -- विदग्धगोपवनिताचित्ताकूतविनोदवान् -- विदग्ध कहिये सर्व अंश में अत्यन्त चतुर जे गोप भार्या तिनके चित्त में जे आकूंत है मनोरथ रूप सूं, विचार किये जे विनोद तिन करके करवे वारे हैं गोपीजन, दिन में विचार करे हैं, रात्रि समय जब श्रीजी मिलेंगे तब ऐसे वंध आदिक और हास्य कूं करेगें ऐसे दिन कूं गोपीजन तो केवल विचार ही करे हैं । श्रीजी तो विनके कहे विना ही तिनके विचारे मनोरथ अनुसार ही रमण आदि करे हैं यह सूचना करी । तासूं रमण कूं अत्यन्त सरस भाव सूं सूचन कियो, और यहां गोपीन कूं विदग्धा कह्यौ सो गोपिन में विदग्ध भाव श्रीजी के सम्बन्ध सूं ही स्वतः है या अर्थ जनायवे कूं गोपवनिता कह्यौ । गोप हैं, गोचारण ही करे हैं, तासूं चतुर नही हैं, रस में मुग्ध हैं विनकी स्त्री कैसे रस में अत्यन्त चतुर होवे हैं तासूं ऐसे विनोद तो केवल श्रीजी सूं गोपिन कूं भये अथवा अत्यन्त विदग्ध जे गोपी जन है विनके चित्त में मनोरथ रूप जे विनोद विलास हैं तिनके पूर्ण करवे

वारे जिनके ऐसे श्रीजी हैं, सो तो जब विचारे हैं के श्री स्वामिनी जी कूं बुलाय के और बात में लगाय के चुंबन करूंगो तब पधारी श्री स्वामिनी जी कूं गोद में बैठार के पूछत भये, के कहा समाचार है इतने में अत्यन्त रस विदग्धा श्री स्वामिनी जी अचानक ही श्रीजी कुं चुंबन करके कहें हैं के यही समाचार है । तब महा विनोद होत भयो, ऐसे वाकूं स्मरण करके यह कह्यौ याही सूं ही विनोद पद कहयो ऐसे एकान्त में कितनी एक गोपिन के साथ श्रीजी रमण करे हैं इनमें भेजी भई दूतीन सूं, श्रीजी कूं यमुना तट में पधारे जान के अनेक प्रकार के वस्त्रन कूं लेकें तहा पधारी वाकूं स्मरण करके कहें हैं --

९४ -- नानोपायनपाणिस्वगोपनारीगणावृतः -- नाना प्रकार की उपायन है भावात्मक वस्तु है हाथ में जिनके ऐसी गोपिन के गणन सूं मिले भये हैं अथवा सब गोपिनने विचार्‌यो जो ऐसे रमण के अनन्तर श्रीजी श्रमित भये हैं आरोगे हू बहुत देरी भई है सो शीघ्र ही विन गोपिन में कोई एक गोपी जायके संपूर्ण सामग्री कूं लेकर तहां आई ताकूं स्मरण करत, कहें हैं **नानोपायनहूति** सो नाना प्रकार की जो उपायन है सो शिखरण, बूँदी, शक्कर पारा, सेव, मनोहर गुंजा आदि पकवान और पेड़ा, बरफी, औट्‌यौ अति मीठो दूध आदि रस वारे पदारथ और ताम्बूल चंदन कस्तूरी आदि सुगंधित द्रव्य, वस्त्र, माला, पुष्प आदि हैं हाथन में स्थित जिनके, ऐसी जे गोपी तिनके जे गण कहिये

समूह तिन करके आवृत हैं चारों और सूं मिले हैं सामग्री के हाथन में स्थिति कहवे सूं यह सूचना है के जब वे गोपी आई तब श्रीजी रमण स्थल कूं छोड़ के यमुना जी के निकट अति श्रेष्ठ सघन वृक्षन की छाया वारे स्थल में पधारे हैं तहां सब सखीन के साथ बैठके, योग्य स्थल में जल विहार करवे कूं इन गोपिन करके मिले भये ही जब चलते भये हैं, ता समय की सूचना है -- हाथन में सामग्री तो चलने में ही धारण करी जाय है नहीं तो सामग्री कूं तहाँ धारण कर देती और तिन गोपीन सूं मिले भये पधारे हैं तासूं मध्य में विलास गमन की सूचना है सो -- **ततश्चकृष्णोपवने जलस्थलः** । इत्यादि श्लोकन सूं कह्यो है गोप नारी पद कह्यो तासूं यह ब्रज भक्त वैदिक लैकिक मर्यादा कूं भी नही माने हैं सबकूं छोड़ एक श्रीजी कूं ही भजे हैं याही सूं ही श्रीजी भी इनकूं लोक वेदातीत फल दान करे हैं यह जतायवे कूं ब्रज भक्तन में गोपी संबंध निरूपण कियो और गणपद कह्यो है ऐसे गति कूं निरूपण करके तहां जायके जो करत भये, अब ताकूं कहे हैं --

९५ -- वांछाकल्पतरुः -- वांछा सिद्ध करवे में कल्पवृक्ष रूप है तहां यह भाव है तहां श्री यमुनाजी हैं खिले भये जामें कमल हैं और शब्द करते जामें मोर, हंस, सारस हैं और मध्य में स्थित अनेक प्रकार के पुष्पन सूं रची भई स्थली जैसे शोभायमान है और शीतल मंद सुगंध पवन कर सेवित है ऐसी यमुनाजी कूं देखके श्रीजी कूं जलक्रीड़ा करवे की इच्छा भई तब

श्रीजी जल क्रीड़ा सूं श्रम करवे के लिये जल क्रीड़ा करते भये हैं तहां जिनकी जैसी जैसी कामना है तैसी तैसी करते भये सो **ताभिर्युतः ममपोहितुं** या श्लोक में कह्यो है और वांछापद कह्यो तासूं तिनके कहे विना ही तिनके मनोरथ पूर्ण करते भये हैं यह सूचना करी और कल्पवृक्ष कह्यो तासूं ऐसे श्रीजी की सौंदर्यता के निरूपण में प्रथम भयो जो प्राकट्य ताके पीछे श्री यमुनाजी के तट में गोपीन ने कियो जो आसन तापर विराजमान श्रीजी की शोभा कूं स्मरण कर जैसे तब तहां प्रवेश करके अपने श्री अंग संग सूं सौंदर्यता आदि सूं प्रथम भयो जो विरह ताको दूर करत भये हैं तैसे अब भी ताप कूं दूर करत इस भाव सूं रमण के पीछे यमुना तट पे विराजमान शोभा कूं कहें हैं -

९६ -- कामकलारस शिरोमणिः -- काम रूप जे कला तिस सम्बन्धी जो रस ताके शिरोमणि हैं सर्वश्रेष्ठ हैं ऐसो कोई और जाने नहीं है श्रीजी को जो रमण हैं सो अति कठिन हैं तासूं लौकिक अलौकिक अनुभाव सूं जल में भी रमण करें हैं और कामकला कहवे सूं कलान की विचित्रता हू सूचन करी अथवा काम के जे कला रस हैं विनके शिरोमणि रूप हैं कहा के, कामकला रस रूप ही हैं जासूं उत्कर्ष होय है सो समान जात में ही योग्य होय हैं तासूं सदा रस पूरण होय है यह सूचना करी, अथवा काम कला रस भयो है, शिरोमणि भूत जा श्रीजी सूं, ऐसे हैं सो काम रस हैं या कारण होयवे सूं मर्यादा में अति तुच्छ हैं अब श्रीजी

ने तोकूं तो ब्रह्मानन्द मोक्षादि सूं भी अधिक कियो है तासूं तैसे कह्यो ऐसे जल क्रीड़ा अनन्तर तीर में पधार कर श्रीअंग पोंछ के वस्त्रादिक कूं पहिरके सब ब्रज भक्तन के साथ भोजन कूं करत भये हैं । ताके पीछे तांबूल बीड़ी आरोगत, फेंटा खुले बंद को वागो पहिरके बिन ब्रज भक्तन ने सिद्ध कियो आसन ता ऊपर विराजमान होत भये हैं तब वे ब्रज भक्त श्रीजी के श्री मस्तक पै तिलक लगायके कपोलन सूं लेकर सर्व अंगन में चंदन कूं लेप कर माला कूं पहिराय के आप भी आपस में श्रृंगार, बेंदी, काजर आदि कूं कर पुष्पमाला पहिरके श्रीजी के चारों ओर विराजमान भईं तिन ब्रज भक्तन के मंडल में शोभायमान श्रीजी की शोभा कूं स्मरण कर कहें हैं-

९७ -- **कंदर्पकोटि लावण्यः** -- कोटि कहिये असंख्य जे कंदर्प काम तिनसूं भी अधिक है शोभा जिनकी ऐसे श्रीजी हैं, सो तैसे (चकास गोपी परिषद्गतो हरि स्त्रैलोक्य लक्ष्म्यैक पदं वपुर्दधतु) गोपीन की सभा में प्राप्त भये निजजनन के मन हरवे वारे श्री जी त्रिगुण ब्रज भक्त विनकी जो लक्ष्मी शोभा तिसकी एक आश्रय रूप परम सुन्दर स्वरूप कूं धारण करके महा शोभायमान होत भये हैं सो श्री भागवत फल प्रकरण में कह्यो है ताकूं स्मरण कर कहें हैं --

९८ -- **कोटिंदुललितद्युतिः** -- असंख्य चंद्रमान सूं भी ललित है मनोहर है द्युति कहिये कांति जिनकी कोटि चंद्रन सूं भी अधिक कांति के सौंदर्य ताके कहवे

सूं वा चंद्रमा में भी जे धर्म नहीं है सो इन श्रीजी में है यह सूचना करी तासूं सदा निर्मल रहनो और की प्रभा सूं पराभव न होवनो सर्वदा एक रूप होवनो गोपीन के श्री मुख को प्रकाश करनो इत्यादि धर्मन की सूचना करी याही सूं ही श्रीजी के आगे लौकिक चंद्र लीला उपयोगी नहीं है जासूं लौकिक चंद्र की प्रभा तुच्छ है तासूं उद्दीपन आदि में अप्रयोजक है तासूं श्रीजी की रस लीला के उपयोगी तो अलौकिक चंद्र है, सो श्री जी के मन का अधिष्ठाता है लीला के उदय में समान ही जाको उदय है लीला के विराम के समान जाको विराम है आकाश के मध्यपर्यंत जाकी गति है अस्तभाव सूं रहित है यह सम्पूरण **तदोदुराजः** या श्लोक में निरूपण कियो है और वे रास योग्य रात्रिनित्य है और सो लीला भी नित्य है तासूं या चंद्र की पश्चिम दिशा अस्तरूप को होय किंतु अस्त नहीं होय है श्रीजी की प्रभा कूं **कोटिंदुललितः** कहवे सूं अंगसंग के विना भी परसती भई जे श्रीजी की प्रभा ताके संबंध सूं ही ताप की निवृत्ति होय है यह सूचना करी जा की प्रभा ही ताप कूं मिटावे है तो वाके संगम में ताप की निवृत्ति में कहा कहनो यह भाव है अथवा रास में अपने निकट स्थित ही श्रीजी को दर्शन होय है और स्वरूप न कूं दर्शन श्रीजी रस सिद्धि के अर्थ नहीं करावे है और गोपी के पास भी तिस स्वरूप को दर्शन ता समे होय तो रसाभास होय तासूं तहां तहां और गोपीन के पास श्रीजी की प्रभा सूं ही दर्शन करती भई है और ता प्रभा

कूं अपने निकट विराजमान श्रीजी कूं ही मानती भई है तासूं सबके मनोरथ बिना यत्न के ही सिद्ध करें हैं तामें भी -- कार है यह सूचना करी जैसे कल्पवृक्ष एक देवन के ही योग्य है तैसे यह कल्पवृक्ष एक ब्रजभक्तन के ही योग्य है यह सूचना करी, तहां कहें हैं --

९९ -- नवीन मधुर स्नेहः -- नवीन है, सदा नूतन है और मधुर है स्नेह जाको ऐसे श्रीजी हैं । नवीन जो स्नेह होय है सो बहुत होय है, और श्रीजी को स्नेह तो सदैव नूतन होय तासूं सदा अधिक स्नेह है और मधुर है, ता आसक्ति कूं विस्मरण करावें हैं, और अभिलाषा कूं बढ़ावें हैं यह सूचना करी है, अथवा नवीनों में है मधुर स्नेह जाको ऐसे श्रीजी हैं । यह थोरी सी कुपित भई स्वामिनीजी ऐसे कहत भई, ऐसे श्रीजी में रहे धर्म कूं कहेकर अपने में रहे धर्म कूं निरूपण कर कहें हैं --

१०० -- प्रेयसी प्रेम संचयः -- प्रेयसीजे श्रीजी कूं प्रिय गोपीजन विनके, प्रेम संचय जामें ऐसे श्रीजी हैं जैसे कहे से प्राप्त जो वस्तु सो ताकूं ऐकांत में गुप्त भाव सूं धरी जो यह तैसे पुत्र, धन, घर, देह आदि में स्थित जो स्नेह है सो श्रीजी में जासु धर्‌यौ है तैसे और कोई नहीं जान सके यह अर्थ है वास्तव में तो सकल ही गोपीजन श्रीजी के प्राकट्य कूं यहां जानके सर्व आशा कूं त्याग के विगाढ़ भाव सूं हृदय में ही प्रेम के संचय कूं करती भई तिस प्रेम सूं ही अब प्रकट भये हैं श्रीजी यह अर्थ है याही सूं ही श्री भागवत में

चिरात्वाया-धृतामाशा चिरकाल सूं तुमारे में आशा धारण करी है ऐसे तिन गोपिन ने हूं कह्यौ है सो यहां गोपिन कूं प्रेम संचय रूप जे श्रीजी तिनकी अत्यंत प्रिय निरूपण करवे सूं यह गोपी भी श्रीजी को प्रेम संचय रूप ही है ऐसे सूचना करी, अथवा कोई समय श्रीजी यहां श्रीं स्वामिनी जी पधारेगे यह आशा सूं पुष्प, चंदन, काजर, लहंगा, कस्तूरी, विविध सामग्री बीड़ी माला आदि कूं निकुंज में लेके विराजे हैं इतने में श्री स्वामिनी जी हूं पधारे तब अपने हाथन सूं श्रृंगार करके रमण करत भये ऐसे ताकूं स्मरण कर कहें हैं प्रेयसी जे अत्यन्त प्रिय गोपी, तिनके हित है प्रेम करके संचय जिनको ऐसे श्रीजी हैं, ऐसे वाह्य धर्म कूं वर्णन करके अब वाहीं समय के ही अन्तर धर्म कूं स्मरण कर कहें हैं --

१०१ -- गोपीमनोरथाक्रांतो -- गोपिन के लिये जो मनोरथ है के गोपिन कूं यहां मिलनो यह बात कहनी ऐसे कहना इत्यादिकन सूं आक्रान्त है कहा के व्याप्त है श्रीजी में और भाव नहीं है अथवा कोई कहे श्रीजी गोपिन के विना कोई और भक्त के घर श्रीजी पधारे तो, तब कैसे मिलेंगे, तहां श्री स्वामिनी जी आज्ञा करे हैं के गोपिन के हू मनोरथन सूं आक्रांत है तासूं यहां गोपिन के सिवाय और भाव कूं तहां प्रवेश हूं नहीं है यह भाव है तासूं यह स्वरूप तो केवल ब्रज भक्तन के अर्थ ही है यह सूचना करी याही सूं ही कह्यौ है **श्रुतिभिर्विमार्ग्यं** श्रुति भी जाकूं ढूँढ़े हैं पावे नहीं हैं गोपिन के अर्थ ही प्रकटे है सो कह्यो है **तासामाविरभूदिति**

और **एवं मदर्थोज्झितःलोकवेद** इत्यादि श्लोकन सूं भी यह सिद्ध होय है यह रसिक शिरोमणि स्वरूप तो ब्रज भक्तन के अर्थ ही है पर यामे महाभाग्य जे जन हैं विनकूं यही विश्वास करवे योग्य है इतनो कथन हूं विन महाभाग्यवान जीवन के अर्थ है सो अधिक कहा लिखे अथवा तव श्रीस्वामिनीजी कूं प्रथम ही श्रीजी को दर्शन मिलन बोलन आलिंगन आदि मनोरथ सूं घर आदिक कूं भी विस्मरण होय गयो ताकूं स्मरण कर कहें हैं गोपी जे स्वामिनी जी सो भई हैं मनोरथन सूं भरी जा श्रीजी सूं, ऐसे श्रीजी हैं अथवा गोपी मनोरथन सूं भरी भई है जा श्रीजी के निमित्त ऐसे श्रीजी हैं। ऐसे मनोरथन के वर्णन में प्रथम जब कोई समय श्रीजी अपने नृत्य कूं दिखायके स्वामिनी जी के मनोरथ पूर्ण करत भये हैं ताकूं स्मरण कर कहें हैं --

१०२ -- नाट्यलीलाविशारदः -- नाट्य लीला में विशारद कहि ये अत्यन्त चतुर है नाट्य के साथ लीला पद कहवे सूं यद्यपि त त्त था थै ता थै आदि शब्द है सो निरर्थक तथापि तिन शब्दन के अनुसार भी नृत्य सरस है यह जतायवे कूं लीला पद कह्यौ अथवा नाट्य पद सूं शास्त्रोक्त शुद्ध नृत्य और लीला पद सूं देशानुसार नृत्य कह्यो जाय है तासूं नाट्य में और लीला में चतुर है अथवा कोई समय श्री स्वामिनीजी श्रीजी के आगे नृत्य करे है तब श्रीजी प्रति पद ही भले भले कहत शिर कूं हिलावते और प्रीति पूर्वक देखते सराहना करे हैं और अधिक हर्ष सूं बुलाय के आलिंगन भी करे है

सो ताकूं स्मरण कर कह्यो नाट्य जो स्वामिनी जी को नृत्य तामे जो लीला स्वामिनी जी की, आलिंगन आदि वामे विशारद है अत्यन्त रसिक होयवे सूं ताके ज्ञाता है अथवा नाट्य लीला में विशारद कहा चतुर भई है गोपीजन जो श्रीजी सू, सोतो श्रीजी स्वयं नृत्य कर गोपिन कूं तैसे सिखावे है ऐसे श्रीजी के सरस नृत्य कूं कहेकर अब वाकी सरसता में हेतु कूं कहती भई ता समय में जैसे श्रीजी है ताकूं वर्णन करे हैं -

१०३ -- जगत्रयमनोमोहकरो -- तीनो जगत में भी जो गोपिन के मन को मोहे है ताकूं कहै है और ताके पीछे प्रकट भये श्रीजी कूं स्मरण कर कहै हे **मन्मथ मन्मथः** कामदेवन को भी वश में करवे वारे है तहां फल प्रकरण में भी कह्यौ है **साक्षात्मन्मथ मन्मथः** साक्षात मनमथ जे कामदेव तिसके भी मनके मोह करवे वारे अलौकिक कामदेव स्वरूप सूं प्रकटे है श्रीजी, ता को भाव यह है विरह है सो तिनको स्वभाव ही है जो कामादि भावन कूं उपमईन करनो सो अति कठिन विरह के प्रभाव कूं काम आदि जे भाव सो रहे सो सब तिरोधान होय गये तासूं स्वयं ही श्रीजी कामदेव रूप सूं प्रकट भये तैसे कामदेव स्वरूप सूं श्रीजी जब गोपी जन के हृदय में प्रवेश करत भये तब ही ता कामदेव कूं ब्रज भक्तन के हृदय में भी प्राकट्य अवश्य होय है तब ही रस होय है अन्यथा गोपिन के हृदय में कामदेव स्वरूप को प्राकट्य नहीं होय तो विरह सूं सब कामादि भावन के तिरोधान होयवे सूं रसाभास होय जाय याही सूं

ही श्री भागवत में कह्यो **काचित्करांबुजं** इत्यादि सूं विरह सूं ताप के त्याग कूं कहे कर भी फेर **श्रुत्वा भगवतोवाचःविरहजंतापंजदुः** श्री जी के वचनन कूं सुनके विरह से भये ताप कूं त्याग करत भई ऐसे ताप को त्याग दूसरी वेर कह्यो सो ताप को त्याग तो ताप होय तो ताको त्याग होय सके ऐसे विस्तार सूं अलं है तहां कोई कहे के ऐसे कामदेव स्वरूप भी काहे कूं प्रकटे हैं तहां कहें है --

१०४ -- मन्मथ मन्मथः -- कामदेव तो किसी के वश में नहीं है किंतु तिस कामदेव के वश में सब है ऐसो काम देव भी यहां श्रीजी के वश में है यासूं अधिक कहा कहे यह भाव है अथवा रास में प्रथम भये श्रीजी के विरह में जड़ जे वृक्ष आदिक तिनमें चेतन को जो कार्य है श्रीजी के गमन को ज्ञान ताकूं मान के सब वृक्षन सूं पूंछत भई हैं के श्रीजी कहां पधारे है और तैसे लीलादि कूं भी करत भये ताकूं स्मरण कर कहें हैं के --

१०५ -- गोपसीमंतिनी शश्वद्भावापेक्षापरायणः-- गोप सीमंतिनी जे गोपीजन तिनको जो सर्वदा भाव है काम भाव और अपेक्षा तिनमें जाको चित्त है ऐसे श्रीजी है - तासूं तिनके अर्थ कामरूप भी होय है -- अथवा गोपिन की जे शश्वद्भाव है सदानिकट विराजनो और अपेक्षा इनमें परायण है सावधान चित्त जाको ऐसे श्रीजी है गोपिन की जेश शश्वदभावा पेक्षा है श्रीजी के निकट रहवे की अपेक्षा है तिनके परायण है तिनके विषय है

और भी है के श्रीजी भी तैसे धर्म वारे है जासूं एक क्षण भी त्याग करवे कूं शक्य नही है यह कहें हैं -

१०६ -- प्रत्यंगरभसावेश प्रमदाप्राणवल्लभः -- नृत्य में जो प्रत्यंग रस वस कहा के प्रतिपद ही अभिनय को देखावने की इच्छा सूं भयो जो अधिक उत्साह तामें है आवेश जिनकूं ऐसे श्रीजी हैं । तासूं अभिनय में तद्रूप ही अभिनय कूं प्रकट करे है ऐसी सूचना करी यासूं नृत्य अत्यन्त सरस है यह भाव है तासूं यह देशानुसार नृत्य कह्यौ है तासूं आरंभ ये शुद्ध शास्त्रोक्त नृत्य पीछे देशानुसार नृत्य ऐसे मर्यादा सूचना करी ऐसे कोई गोपी कूं देखने वारी वनाय के बैठायके वाके आगे नृत्य करत अत्यन्त रस के उदय में श्री स्वामिनी जी के सहित ही नृत्य करत भई, ताकूं स्मरण कर कहें हैं --

प्रमदाप्राणवल्लभः -- प्रकृष्ट है अत्यंत अधिक हैं मद जाकूं ऐसी जे गोपी जन विनकूं प्राणन सूं भी अधिक प्रिय है जैसे श्रीजी नृत्य में अभिनय के दिखायवे में अत्यन्त उत्साही हैं तैसे श्री स्वामिनी जी भी अधिक उत्साहवती है यह जतायवे कूं प्रमदा पद कह्यो जब दोनो तुल्य होय तब सरस भाव होय है तासूं श्री स्वामिनी जी हूं तैसे है अथवा प्रमदा जे अधिक रस मद वारी गोपी सो है प्राण वल्लभा जिनकी, ऐसे श्रीजी है अथवा प्रत्यंगरभस इत्यादि पदन सूं रमण सामयिक श्रीजी कहे जाय है सो तो रमण समय में अंग अंग प्रति है रति वे है वाको आवेश जिनकूं ऐसे श्रीजी है और वा रति समय में रति रस सूं अधिक भयो है मद

जाकूं ऐसी गोपी कूं प्राण जे रति युद्ध में बल तासु वल्लभ है प्रिय है अथवा प्रमदा जे रमण रस सूं मदवारी गोपी तिनको जो प्राण, कहिये रमण युद्ध में मद्दर्न सहन ता रूप बल सो है वल्लभ प्रिय जाकूं ऐसे श्रीजी है अथवा रास में प्रथम भयो जो अंर्तध्यान ताके पीछे भयो प्राकट्य ताके पीछे गोपी विचारे है जो को जाने अब भी श्रीजी कहूँ चले जाय तो तब ढूँढ़वे कूं भी प्राणन कूं दूसरी वेर नहीं हम स्थापन करेंगी ऐसे गोपीजन वियोग से डर के प्राणन सूं भी भीतर के ही श्रीजी स्थापित करे हैं के प्राणन के तो सहित निकसेंगे ऐसे वा समय के विचार कूं स्मरण कर कहें हैं **प्रमदाप्राणवल्लभः** प्रमदा जे समर्थ गोपीजन तिनके प्राणन सूं भी प्रिय है यहां प्रमदा पद है सो श्रीजी के प्राणन सूं भी भीतर ठहराने में जो गोपी की समर्था है ताकूं जतावे है ऐसे स्वामिनी जी अपने प्रमदा भाव कूं निरूपण करके अब श्रीजी के पद कूं निरूपण करे हैं --

१०७ -- **रासोल्लासमदोन्मतः** -- रास रूप जो उल्लास कहिये उत्साह तामे जो मद तासूं उन्मत्त है वा रस सूं सदैव भरे है तासूँ उल्लंघन करी जाने मर्यादा विस्मरण कियो है अपने आत्माराम ब्रह्मभाव और पूर्ण काम भाव आदि जाने याही सूं श्री भागवत में भी कह्यौ **यथामदच्छुद्विदः** ऐसे मद भरे और मर्यादा उल्लंघन करने वारे हाथी को दृष्टान्त दियो मद भरो हाथी मर्यादा कूं नहीं जाने है अथवा रास में उत्साह तिनके मद सूं

उन्मत्त भई गोपी जा श्रीजी सूं, सो **तदंगसंगप्रमदा** या श्लोक में कह्यौ है सो यहां मद पद कह्यो सो रास को स्वभाव ही है और रस कूं विस्मरण करावनो यह जतायवे कूं कहे तहां कोई कहे के जब श्रीजी ऐसे रास मद सूं उन्मत्त है तो तब तोकूं कैसे स्मरण करेंगे तहां कहें हैं --

१०८ -- **राधिकारतिलंपटः** -- राधा के संग को जो रमण तामे लम्पट है ताकूं त्याग नहीं कर सके है अथवा राधा है रति लंपट जामें, अथवा कोई महा भाग्य शालि दिन में निकुंज मंदिर में सुंदर पुष्पन की शय्या में चिरकाल रमण कर श्री स्वामिनी जी सूं आलिंगन करे भये ही शयन करते भये हैं, तब कोई एक अंतरंग रस योग्य महाभाग्यवती सखी प्रेम को जो भार सो अमृत को समुद्र ताकी लहरी जो वर्ण पंक्ति सो कहा के श्री स्वामिनी जी के प्रेमामृत समुद्र के लहरी रूप जे कोमल-कोमल आलाप पोढ़वे के समे कहें हैं तिनसूं पोढ़े भये श्रीजी कूं जानके पीछे ठहर के निर्भय भई थकी श्री स्वामिनी जी में जाको महा स्नेह है तासूं उत्साह वारो जाको महा प्रसन्न मन है तासूं ऐसी गोपी मानो पूछत-पूंछत ही प्रेमामृत समुद्र के लहरी रूप कोमल अक्षरन की पंक्ति सूं रस के अर्थ कहत भई है **राधिकारति-लंपटः** । श्रीजी यहां है तब या वचनामृत कूं सुनके श्री स्वामिनी जी आधी सोये भये उठे हैं या वचन कूं सुनके, श्रीजी के वस्त्र कूं झट उठायो तासूं कंकणन को झणकार भयो तासूं जतावत भई हैं के श्रीजी यहां है

अथवा अपने वस्त्र कूं साहस सूं उठावनो तामें कंकणन के झणकार जतावत भई है तब प्राप्त भई जे गोपी ताकूं ऐकांत में ले जाय के स्वामिनी जी **राधिकारति-लंपटः** ऐसो अपनो नाम संबंधी प्रिय के नाम कहवे सूं प्रसन्न भई थकी श्रीजी के साथ रति रास करवे सूं रस चिन्हन सूं भरयौ जो अपनो अंग ता श्री अंग सूं वा सखी कूं आलिंगन करती भई है । तब वह सखी महा प्रसन्न भई तब वा सखी के प्रति स्वामिनी जी अपने प्रिय की एकांत वार्ता कूं सुनावन लगी तामें महारस को अनुभव भयो तासूं स्मरण कर कह्यौ, **राधिकारति-लंपटः** अथवा श्रीजी और गोपी सूं अवधि कूं कहके श्री स्वामिनी जी के निकट पधारे है तब स्वामिनी जी संपूर्ण रात्रि भर श्रीजी कूं अपने निकट ही राखते भये है तब प्रातः भयो श्रीजी श्री स्वामिनी जी के कंठ में भुजा कुं धारण कर चुंबन करत, कपोल, कुच, उदर, नाभि आदि कूं स्पर्श करत डगमगात चलत मदभरे मतवारे घूमते लाल नेनन वारे श्रीजी वा गोपी के घर कूं पधारे हैं, तब निकट ते वा गोपी की जो सखी सहेली हती सो श्रीजी कूं दर्शन कर कहे है, अब श्रीजी पधारे है तब सो गोपी दर्शन की आर्ति सूं मान करवे कूं असमर्थ है रस के स्वभाव सूं झूठे ही मुख कूं छुपावती भई चुप होय गई, तब श्रीजी पधारे हैं, अनेक चाटुकार करे हैं दीन होयके आगे ठाड़े हैं तब ऐसे श्रीजी कूं देखके पलक ठाड़ी खड़ी होय रही स्वरागमद होत जात हैं सो गोपी अपनी चतुराई सूं अपने वा भाव कूं छिपावे

है पर कहां छिपे तब सब अंगन मे पुलक होय गयो और कामदेव के विषय वाणन सूं व्याकुल भये अपने अंग कूं जतावती और कातर स्वरा सों अपने में दासी भाव हू जतावती, गोपी कहवे लगी, "तुम तो राधिका-रतिलंपट हो काहे कूं मेरे समीप आवोगे" ऐसे कह्यो सो श्रीजी तो राधा के प्राण है ताके साथ जो रमण कियो है तासूं अपने रमण सूं जैसे प्रसन्नता होय है तैसे प्रसन्नता वा गोपी कूं भी भई, सो नुपूर के शब्द सूं श्री स्वामिनी जी के पधारवे कूं जानती भई भी न जानके ही ऐसे कहत भई के "तुम तो राधिकारतिलंपट हो", तब स्वामिनीजी वा गोपी की ठोड़ी पर स्पर्श कर कहें हैं "अरी प्यारी मान कूं दूर कर, अरी या मुख चंद्र कूं देख ऐसे कहके वा गोपी के मुख कूं ऊचो करत भई हैं ।" तब यह सखी श्री स्वामिनी जी कूं रमण रस चिन्हन सूं भरे भये देखके अत्यन्त हर्ष सूं मान वारी ही श्री स्वामिनी जी कूं ही आलिंगन करत भई है तब श्रीजी दोनों कूं ही एक समय में ही इकट्ठे ही आलिंगन करत भये हैं । तब श्री स्वामिनी जी हंसके ऐसे रसिक प्रिय श्रीजी के ऐसे दर्शनानंद सूं भरी तब श्रीजी कूं आलिंगन करत भई तब श्रीजी वा सखी के प्रति महा रस दान कियो तासूं आप स्वामिनीजी आप महा प्रसन्न होत भई हैं ताकूं स्मरण कर यह नाम कह्यो के अब भी पधारे या भाव सूं ऐसे अपने रमण के उत्तर समय कूं स्मरण कर कहें हैं -

१०९ -- खेलालीलापरिश्रांतः -- खेला जो रति क्रीड़ा

वामें जो लीला है विविध बंधादि रूप तासूं परिश्रांत है श्रीजी, अथवा कोई समय में श्रीजी और स्वामिनी जी एकांत में आपस में हठ कर कहें हैं जाको जय होय सो अपनी इच्छानुकूंल चुंबन आलिंगन, बंधादि करे ऐसे दाव लगाय के पासा खेले हैं तब श्रीजी अथवा श्री स्वामिनी जी जब वैसो करे है तामें जो अपने अपने इच्छानुसार दाव है आलिंगन बंधादि सो लीला ताके करवे सूं चारो ओर सूं श्रीजी श्रांत होय जाय हैं। यद्यपि ऐसे अपने कूं भी श्रम होय है परंतु रस आधिक्य में स्त्री पुरुष भाव कूं प्राप्त होय है या रीति सूं पुरुष भाव में अपने में श्रम कूं मानने वारी श्री स्वामिनी जी ने ऐसे कह्यो है तासूं खेलालीला में चारो ओर सूं भ्रांत भई है स्वामिनी जी जा श्रीजी सूं यह भी होय है। अथवा खेलालीला में परिश्रांत भी गोपी जन अपनी श्रांत करी है जाने कहां के रमणांतर श्रांत भई गोपिन कूं कपोल आदिकन में कोमल कर सूं स्पर्श कर श्रम सूं रहित करी है जा श्रीजी ने, ऐसे श्रीजी है सो श्रीमद् भागवत **तासामतिविहारेण** और **तत्करुहस्पर्शश्मोदः** और **ताभिर्युतः श्रम मपोहितु** और **श्रांतोवाआविश-दित्यादि** इन श्लोकन में श्रम निवृति कही है -- यद्यपि नायक कूं श्रम होय तो नायिका कूं नही रुचे है तथापि श्रीजी ऐसे भी श्रम वारे भी अलौकिक शोभा सूं अत्यन्त मोह करे है विलक्षण सुख देवे हैं या अभिप्राय सूं कह्यो सो भागवत में **उत्सवंश्रमसुचार्त्तदशानामुन्नयन** या श्लोक में कह्यो है के संध्या समय में वन सूं जब पधारे

है वा समय में विरह सूं आर्त्त दृष्टि वारी गोपिन के उत्सव कूं श्रम की शोभा कूं बढ़ावे है ऐसे कह्यो है जब वा समय के श्रम शोभा में गोपिन कूं उत्सव होय है तब ऐसे रसरमण के अनंतर श्रम में कहा कहनो यह भाव है। यहां जे रसिक होयगे सो आप ही श्रीजी की कृपा सूं अनुभव भये भावन सूं अनेक अर्थ जानेंगे विस्तार सूं अलग है अब श्रम के कार्य कूं कहें हैं -

११० -- स्वेदांकुरचिताननः -- स्वेद कहिये पसीना वाके जो अंकुर है सूक्ष्म जल कणिका तिनसूं चित्त कहिये व्याप्त श्री मुख जिनको, ऐसे श्रीजी हैं। ता रमण समय में मुखारविंद ही नयन के सन्मुख होय है यासूं और पसीना भी प्रथम मुख में होवे है तासूं मुख ही कह्यो तासूं श्री मुख में जल कणकान की शोभा ऐसे होय है, जैसे मुक्ताफलन सूं होय है। यह सूचना करी और अंकुर कथन सूं क्षण पीछे वेही जल कणिका कछुहिक पुष्ट होय जाय है यह भी सूचना है ऐसे श्रम जल कणन सूं मिले भये श्री मुख कूं देखके स्पर्श करवे की और चुंबन करवे की इच्छा होय है तासूं ऐसो श्रीजी के मुख को भाव कहें हैं। ऐसे सूचना करी अथवा स्वेदांकुर सूं कहा के श्रम जल के कणिकान सूं व्याप्त है गोपिन के मुख जा श्रीजी सूं ऐसे श्रीजी हैं। सो गोपीन के श्री मुख में श्रमजल कणिका विपरीत रमण विकट बंधादि फल सूं जाननो ऐसे क्रम सूं रमण में अनन्तर समय में श्रीजी के स्वरूप कूं निरूपण करे हैं तब कहे हैं --

१११ -- गोपिकांकलसच्छ्री मान् -- गोपी के अंक में आलस सूं मिले भये जैसे आलस वारे निश्चल हैं ता अंक में क्षण मात्र स्थित विराजे होय है ता अंक में स्वाभाविक ही सुख है तासूं सुख को आधिक्य अनुभव करे है अथवा प्रथम कहे **''स्वेदांकुर-चित्ताननः''** या नाम सूं रमण के अन्त कूं कथन कर पीछे बाहर विराजवे के स्थान में आय के गोपी के अंक में विराजते भये हैं तामें विराजे भये ही आलस वारे होय जाय हैं, तासूं **''गोपिकांकालसः''** यह नाम कह्यो अथवा अंक कहिये गोपिन के उरस्थल सो जैसे रमणांतर चलवे में शिथिल होय है तैसे श्रीजी की भी शिथिल गति है तासूं कह्यो गोपीन के अंक कहिये उरस्थल जैसे आलस वारे श्रीजी हैं तासूं जैसे गोपीजन अपने उरस्थलन कूं जोर सूं चलावे है तैसे आलसी शिथिल भये अपनी गोद मे विराजमान श्रीजी कूं भी जोर सूं अपने घर में ले जायके अभ्यंग आदि करे हैं यह भी सूचना करी ताके आगे श्रम निवृति कहें हैं -

११२ -- मलयानिलसेवितः -- अत्यन्त अलौकिक शोभा वारो जो मलय पर्वत संबंधी पवन है तासूं सेवत है सेवन कह्यो तासूं पवन में मंद चलनो सूचना कियो और मलय संबंध सूं सुगंध की सूचना करी और श्री मत्पद सूं शीतल सूचना करी और श्री जो लक्ष्मी ता वारो है सो तो श्री यमुना जी के सूक्ष्म जल कण जैसे भावक भाव आदि इस पवन के लक्ष्मीरूप धनरूप जाने तासूं ऐसे श्रम में भी यह शीतल मंद सुगंध पवन

विभावक है तासूं अलौकिक समर्था वारो है यह सूचना करी अथवा यहां लक्ष्मी जी ने अवसर पाय के विचार कियो कि रमण के अनंतर पंखा आदि करवे कूं मेरो उपयोग मेरी सेवा कहा अंगीकार होयगी तासूं आपके वक्ष के पीछे ठहर के भय सूं लज्जा सूं आप कूं छिपावती भयी देखत भई तब ता सेवा में भी अपनो अवकाश न देखके तहां देखती भई ही दक्षिण दिशा में ठहर गई तब पवन मलय पर्वत के संबंध सूं दक्षिण दिशा सूं आवतो ता मध्य में ठहरी लक्ष्मी के मुख सुगंधि कूं भी ग्रहण करके आवें हैं तासूं कह्यो **मान्मलयानिल सेवितः** --

फलश्रुति

इत्येवं प्राणनाथस्य प्रेमामृत रसायनं ।
यः पठेच्छ्रवयेद्वापि सप्रेम्णि प्रमिलेद् ध्रुवम् ॥१॥

इति पद है सो समाप्ति के लिए है इस पूरे ग्रंथ में श्री स्वामिनीजी ने वियोगावस्था में श्री ठाकुरजी के नाम लीला स्मरण कर करके जो प्रलाप किया है ॥ उससे जो प्रेमामृत की वर्षा हुई है, वो वृज भक्तों के हृदय में सिंचन के लिए रसायन बन गया है ।

और इसी प्रेमामृत रूपी रसायन को जो भी भक्त भक्ति-भाव पूर्वक पढ़े, सुने तथा भजन-चिंतन करे, उसको श्री स्वामिनीजी सहित, श्री रसात्मक प्रभु श्रीकृष्ण के युगल-स्वरूप में निश्चय पूर्वक ही परम अलौकिक दिव्य, वेदातीत स्नेह की प्राप्ति होगी ।

श्रीमद् आचार्य चरण एवं श्रीमद् गुसांईजी के अनुसार आप श्री के युगल स्वरूप में दृढ़ आसक्ति ही इस प्रेमामृत की पूर्ण फल प्राप्ति एवं सिद्धि है । इसलिए कहा भी है :--

भजते व्यदृशी क्रीडाया श्रुत्वा तत्परोभवेत् ।

उस परब्रह्म परमेश्वर की नित्य नई-नई लीला और रसमय क्रीड़ाओं का स्मरण-कीर्तन करने से हमारा हृदय आनन्द से ओतप्रोत होकर श्रीजी में ही लग जाता है । इससे अधिक सुख, फल अथवा सिद्धि और कौन से हो सकती है ।

इति शुभम् ।।

--जय जय श्रीगोकुलेश